देवदूत गाँधी

संपादक

प्रभुदयाल विद्यार्थी

पुस्तक-भंडार

पटना और लहेरियासराय

मूल्य १)

अर्थ तो यह निकलता है कि गांधी जी एक उत्कृष्ट क्षत्रिय हैं और हम उन्हें इसलिये दोष देते हैं कि वे क्षात्र धर्म की मर्यादा तोड़ना नहीं चाहते। गांधी जी को निरे बनिया कह धिक्कारने वाले दर असल यह चाहते हैं कि वे बनियाई व्यवहार करें।

उनका दूसरा आरोप यह है कि—"गांधी जी की अहिंसा नीति ने हिन्दुस्तान के लोगों को दब्बू और डरपोक बना दिया है। बुराई के खिलाफ लड़ने का मादा गांधी जी की नीति की बदौलत कम हो रहा है।"

इन दोनों आरोपों पर कुछ विस्तार के साथ विचार करना आवश्यक है।

कुछ लोगों को यह कहने में बड़ा गर्व होता है कि वे युद्ध प्रिय हैं। लड़ाई में उन्हें मज़ा आता है। संघर्ष में उनकी आत्मा आनन्दित होती है।

गांधी जी संघर्ष टालना चाहते हैं। वे एक शान्तिप्रिय और प्रेमी व्यक्ति हैं। वे संघर्ष से डरते नहीं। मेल-जोल और भाई चारे में उनकी आत्मा उल्लसित होती है। वे असहयोग के प्रणेता और सेनानी हैं। लेकिन उनकी आत्मा हमेशा सहयोग के लिये तड़पती रहती है। वे अहिंसक प्रतिकार-नीति के आविष्कर्त्ता और अनुष्ठाता हैं। लेकिन उनकी आत्मा हमेशा विग्रह की अपेक्षा सन्धि, तनाजे की अपेक्षा मेल-मिलाप और विरोध की अपेक्षा समन्वय अधिक पसन्द करती है।

सम्पादकीय

स्वर्गीय पूज्य महादेव भाई देसाई ने १९४२ जून में मुझ से टहलते समय कहा था—"तुम हिन्दी पत्रों को पढ़ते हो, बापू के लेखों को भी ध्यान से मनन करते हो ; उसमें से कुछ चुने हुए लेखों का एक संग्रह तैयार करो—ताकि हिन्दी पाठकों को तुम्हारी जिज्ञासा का पता चले।" मैंने कहा—मैं तो अभी पढ़ता हूँ क्या लिखूं ? लेकिन मेरा विचार है 'गुरुदेव गांधी' नामक एक पुस्तक तैयार करूँ ? लेकिन मैं प्रथम आप से ही प्रार्थना करूँगा—आप अपनी रुचि का एक लेख मुझे दें। महादेव भाई ने कहा "ठीक मेरे पास कल सवेरे आना मैं तुम्हें लेख दूँगा।" सवेरे स्व० महादेवभाई के पास पहुँचा। देखकर मजाक करते हुए कहा हाँ तुम्हारे लिये एक पुराना और छपा हुआ लेख मेरे पास मिल गया है, यह लेख मुझे पसन्द है, बापू क्या हैं ? यह समझ सकते हो। यदि पसन्द हो तो ले लो जहाँ उपयोग करना चाहो कर सकते हो। मैंने खुशी से वह लेख ले लिया—मुझे यह लेख बहुत पसन्द आया। मैं चाहता था कि 'गुरुदेव गांधी' बापूजी की ७९ वीं जन्म दिवस पर अर्पित करूँ। लेकिन कई उलझनों और देहातों का चक्कर काटते हुए यह सम्भव न हो सका।

न अब इस दुनिया की धरती पर पूज्य बापू का पार्थिव शरीर रहा न पूज्य महादेव भाई का; उस दिन (१२-२-४८) त्रिवेणी संगम पर जब बापूजी की अन्तिम यात्रा समाप्त हो रही थी तब मैं मन-ही-मन

नहीं, वरन सेवा के लिये हैं। उनका बुद्धि स्वातंत्र्य वासनाधीन, विकारवश बुद्धि का स्वैर वर्तन नहीं है, बल्कि निर्विकार स्वातंत्र्य प्रज्ञा की स्वाधीनता है। वे अपने सत्याग्रही तत्वज्ञान द्वारा ग्रंथ-प्रामाण्य, रूढ़ राजाज्ञा और रूढ़ि धर्माज्ञा से परे जाने की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हैं। तो भी श्रेष्ठ ग्रंथों की महत्ता, कानून पालने का महत्त्व और धर्मनिष्ठा की जरूरत के प्रति वे अवहेलना की वृत्ति नहीं पैदा करते। हरेक मनुष्य की बुद्धि में नये नये सत्य खोजने की या सत्य का अधिक शुद्धरूप ग्रहण करने की शक्ति तो है परन्तु वह शक्ति विनीत भाव से दीर्घ प्रयास युक्त तपस्या और विरक्त वृत्ति से की हुई सत्य की खोज से ही प्राप्त होती है इस बात पर वे जोर देते हैं। सत्य की खोज के क्षेत्र में की हुई यह तपस्या एक प्रकार की अहिंसा है। इसमें बुद्धि तथा मन को संयत, अनासक्त और शुद्ध करने पर खास जोर दिया जाता है। ऐसी संयत बुद्धि में अहंकार जड़ नहीं पकड़ पाता और सत्य की उपलब्धि के बाद उसकी प्रस्थापना के उद्योग में आतताईपन के कारण हिंसा नहीं होती। लेकिन आतताइपन या हिंसा के अभाव से उनका यह मतलब हरगिज नहीं कि रूढ़ असत्य के प्रति हमारी नीति अप्रतिकार नीति हो। सत्याग्रह और असत्य का अप्रतिकार ये दोनों चीजें एक दूसरे की विरोधी हैं। उसका अर्थ इतना ही है कि असत्य का प्रतिकार अथवा असत्य का निराकरण असत्य से नहीं हो सकता, वह सत्य से ही हो सकता है।

रो रहा था और कलप रहा था कि पूज्य बापू का वह पवित्र शरीर अब कहाँ देखने को मिलेगा ? लेकिन एक चीज से सन्तोष हो रहा था। पूज्य बापूजी अपने पीछे अनमोल चीजें छोड़ गये हैं उन्हीं को पढ़कर सन्तोष करना होगा।

पूज्य बापूजी भारतवर्ष और संसार के लिये क्या थे ? क्या नहीं ? इसका नाप तोल इतिहास कार करेगा ? बापू ने ही बिना किसी खून खराबी के हमारे मुल्क को आजाद कराया है। इसमें किसी के दो मत नहीं हो सकते। दुनिया बापू के अनमोल अस्त्र से भौचक्की हो गई। और पूज्य बापू का लोहा मान लिया।

'गुरुदेव गांधी' संग्रह के लिये हमारे पूज्य लेखकों ने जो स्वीकृति प्रदान की है उसके लिये मैं उनका ऋणी हूँ। और मैं उन समाचार पत्रों का भी एहसानमन्द हूँ जिनके पत्रों के द्वारा मुझे गुरुजन लेखकों का लेख मिला।

'गुरुदेव गांधी' संग्रह में पुस्तक-भण्डार के संचालक ने भी खूब भाग लिया है। धन्यवाद !'

विनीत

प्रभुदयाल विद्यार्थी

त्रिवेणी संगम, प्रयाग

१२-२-४८

विषय-सूची

बापू

पं० जवाहर लाल नेहरू

१९१६ का साल था। कोई ३२ साल से ऊपर की बात है। तब मैंने बापू को पहले-पहल देखा था, और तब से तो एक पूरा युग बीत गया है। लाज़मी तौर पर हम बीते हुए ज़माने की तरफ देखते हैं और बेशुमार यादें ताज़ा हो जाती हैं। हिन्दुस्तान के इतिहास में यह कितना अनोखा ज़माना रहा है! सारे उतार-चढ़ाव और हार-जीतवाली इस सच्ची कहानी ने वीररस के काव्य का अनोखा रूप ले लिया है। हमारी मामूली ज़िन्दगियों को भी रोमांचक कल्पना के प्रकाश ने छुआ, क्योंकि हम इस ज़माने में जिये, और हिन्दुस्तान के महान नाटक में कम या ज्यादा हमने पार्ट अदा किया।

यह ज़माना सारी दुनिया में लड़ाइयों, क्रान्तियों और हिलानेवाली घटनाओं का ज़माना रहा है। फिर भी हिन्दुस्तान की घटनाएँ इनसे बिलकुल अलग और साफ दिखाई देती हैं, क्योंकि वे बिलकुल दूसरी ही सतह पर हुई थीं। अगर कोई बापू के बारे में काफी जाने बिना इस ज़माने का अध्ययन करे, तो उसे ताज्जुब होगा कि हिन्दुस्तान में यह सब कैसे और क्यों हुआ? इसे समझना भी कठिन है कि हम में से हर-एक मर्द या औरत ने जो कुछ किया था एक राष्ट्र भी किसी

भावना या जोश में बहकर एक खास ढंग का काम करता है—कभी-कभी ऊँचा और तारीफ के लायक काम करता है, अक्सर नीचा और बुरा काम करता है। लेकिन, वह जोश और वह भावना थोड़े समय-बाद खतम हो जाती है और व्यक्ति जल्दी ही कर्म और अकर्म की अपनी मामूली सतह पर लौट आता है।

इस जमाने में हिन्दुस्तान के बारे में सिर्फ यही ताज्जुब की बात नहीं थी कि सारे देश ने एक ऊँची सतह पर काम किया, बल्कि यह भी थी कि उसने इतने लम्बे अरसे में लगातार कम या ज्यादा उसी सतह पर काम किया। वह सचमुच तारीफ के लायक काम था। इसे तबतक आसानी से समझाया या समझा नहीं जा सकता, जबतक हम उस अचरज में डालनेवाले व्यक्ति की तरफ़ नहीं देखते, जिसने इस जमाने को बनाया है। एक बड़ी भारी मूर्त्ति की तरह बापू हिन्दुस्तान के इतिहास की आधी सदी में पाँव फैलाकर खड़े हैं। वह बड़ी भारी मूर्त्ति शरीर की नहीं, बल्कि मन और आत्मा की है।

हम बापू के लिये शोक करते हैं और अपनेको अनाथ महसूस करते हैं। लेकिन, उनके तेजस्वी जीवन को देखते हुए शोक मनाने को है ही क्या? सचमुच दुनिया के इतिहास में विरले ही मनुष्यों के भाग में यह बदा होगा कि वे अपने ही जीवन में इतनी बड़ी कामयाबी देख सकें। बापू हमारी कमजोरियों और त्रुटियों के लिये दुखी थे और हिन्दुस्तान

को और ज्यादा ऊँचाई पर न ले जाने का उन्हें अफसोस था। उस दुःख और अफसोस को हम आसानी से समझ सकते हैं। फिर भी कौन कह सकता है कि उनका जीवन असफल रहा? जिस चीज को उन्होंने छुआ, उसे कीमती और गुणवाली बना दिया, जो काम उन्होंने किया उसका काफी अच्छा नतीजा निकला—हालाँकि शायद उतना बड़ा नहीं, जितने कि वे आशा करते थे। हमपर यही छाप पड़ती थी कि वे जो कोई काम हाथ में लेंगे, उसमें सचमुच असफल हो ही नहीं सकते। गीता के उपदेश के मुताबिक वे फल की इच्छा न रखते हुए स्थित-प्रज्ञ की तरह उदासीन रहकर काम करते थे। इसीलिये काम का फल उन्हें मिलता ही था।

कठिन कामों, हलचलों और एक-सी प्रवृत्तिवाले सामान्य जीवन से भिन्न अनेक साहसों से भरी हुई उनकी लम्बी जिन्दगी में बेसुरा राग शायद ही कभी सुनाई पड़ता था। उनकी सारी विविध प्रवृत्तियों में ज्यादा-ज्यादा मात्रा में एकरसता आ ही गई और उनके मुँह से निकलनेवाला हरएक शब्द और हरएक चेष्टा इसमें ठीक तरह से जम गई थी। और इस तरह बेजाने ही वे पूरे कलाकार बन गये; क्योंकि उन्होंने जीने की कला सीखी थी: अगरचे जीवन का जो ढंग उन्होंने अख्तियार किया था, वह दुनिया के ढंग से बहुत भिन्न था। इससे यह बात साफ हो गई कि सत्य और अच्छाई की लगन, दूसरी चीजों के अलावा जीवन में ऐसी कलात्मकता प्रदान करती है।

जैसे-जैसे वह बूढ़े होते गये, उनका शरीर उनके भीतर की शक्तिशाली आत्मा का सिर्फ एक वाहन-जैसा दिखाई पड़ने लगा। उनकी बात सुनते हुए या उनको देखते हुए लोग उनके शरीर को भूल जाते थे, और इसीलिये जहाँ वे बैठते थे, वह जगह मन्दिर बन जाती थी और जहाँ वे चलते थे, वह पूजा का स्थान बन जाता था।

उनके अवसान में भी एक अनोखी भव्यता और कलापूर्णता थी। उन-जैसे व्यक्ति के लिये और उनके जैसी जिन्दगी के लिये हर दृष्टिकोण से वह एक योग्य अन्त था। सचमुच उस मृत्यु से उनके जीवन का सबक ऊँचा उठ गया। मौत के समय वे अपनी शक्तियों से भरपूर थे, और प्रार्थना के वक्त उनकी मृत्यु हुई, जबकि बेशक वे मरना पसन्द करते। दो फिरकों के बीच एकता कायम करने के लिये वे शहीद हुए। इसके लिये उन्होंने हमेशा काम किया था। और खास करके पिछले एक या ज्यादा वर्षों से तो उन्होंने इसके लिये लगातार मेहनत की थी। वे अचानक मर गये; जिस तरह कि सभी लोग मरना चाहेंगे। उनके बारे में शरीर के घुलते जाने या लम्बे अरसे तक बीमार रहने की कोई बात ही पैदा नहीं हुई। ज्यादा उम्र में इन्सान की याददाश्त में जो कमी आ जाती है, वह भी उनमें नहीं आई। तब हम क्यों उनके लिये शोक करें? हमारी याद में वे उस गुरु की तरह हमेशा रहेंगे, जिनके डग अन्त तक फुर्तीले रहे, जिनकी मुस्कान दूसरों के ओठों पर भी मुस्कान ला देती थी और

मानसिक शक्तियां अचूक थीं। अपने जीवन और मृत्यु दोनों में उनकी शक्तियाँ अपनी चरम सीमा पर पहुँची हुई थीं। वे हमारे मन में, और जिस युग में हम रहते हैं, उसके मन में अपनी ऐसी तसवीर छोड़ गये हैं जो कभी मिट नहीं सकती।

वह तसवीर कभी धुँधली नहीं होगी, मगर उनकी सिद्धि इससे बहुत ज्यादा है। उन्होंने हमारे मन और आत्मा के तत्त्व में प्रवेश करके उन्हें बदला है और उनको नये ढंग से तैयार किया है। गांधी-युग की पीढ़ी का तो अन्त हो जायगा, मगर गांधी का वह असर बना रहेगा, और हर आनेवाली पीढ़ी को प्रभावित करता रहेगा, क्योंकि वह हिन्दुस्तान की आत्मा का एक अंग बन गया है। जब इस देश में हम रूहानी तौर पर कंगाल होते जा रहे थे, बापू हमें समृद्ध और बलवान बनाने के लिये हमारे बीच में आये। और जो ताकत उन्होंने हमें दी, वह एक दिन या एक वर्ष की नहीं है, बल्कि उससे हमारी राष्ट्रीय विरासत में हमेशा के लिये भारी वृद्धि हो गई है।

बापू ने हिन्दुस्तान के लिये, दुनिया के लिये और हम गरीबों के लिये भी बहुत बड़ा काम किया है, और उन्होंने उसे आश्चर्य-जनक रीति से अच्छा किया है। अब हमारी बारी है कि हम उन्हें या उनकी याद को धोखा न दें, बल्कि अपनी पूरी योग्यता के साथ उनके काम को आगे बढ़ाते रहें और जो प्रतिज्ञाएँ हमने इतनी बार ली हैं, उन्हें पूरा करें।

—नई दिल्ली ५-२-४८

यमुना-तट की राख में से

देशरत्न डा० राजेन्द्र प्रसाद

हमसे बोलने, हमें धीरज बँधाने, हमें बढ़ावा देने और हमारी रहनुमाई करने के लिये महात्मा गान्धी आज हमारे बीच जिन्दा नहीं हैं। मगर क्या उन्होंने अक्सर हमसे यह नहीं कहा कि शरीर अस्थायी है और एक-न-एक दिन उसका नाश अवश्य होता है और सिर्फ आत्मा ही अमर है और उसका कभी नाश नहीं होता। क्या उन्होंने हमसे यह नहीं कहा था कि जबतक भगवान को मेरे इस शरीर से काम लेना होगा तबतक वह इसे बनाये रखेगा। हो सकता है कि उनकी आत्मा शरीर के बंधनों से छूटकर ज्यादा आजादी से काम करे और ऐसे साधन पैदा करे जो उनके अधूरे काम को पूरा कर सके। हो सकता है कि यमुना के किनारे पड़ी हुई उनकी राख में ऐसी ताकतें उठ खड़ी हों जो गलतफहमी और अविश्वास के सारे कुहरे और बादल को उड़ा दें और ऐसी शान्ति और मेल कायम करें, जिसके लिये वे जिये, उन्होंने काम किया और हाय! अन्त में हत्यारे की गोली के शिकार बने।

हिन्दूधर्म में या सच पूछिये तो इन्सानियत में जो महान और श्रेष्ठ हैं, क्या वे उस सबके सार और साकार रूप नहीं थे? और तिसपर क्या वह एक हिन्दू का ही हाथ नहीं था,

जिसने उस हृदय को अपनी गोली का निशाना बनाया जो जाति, धर्म और देश की सीमाओं से परे था? इस पाप का मकसद क्या हो सकता है? यह हिन्दूधर्म को बचाने के लिये किया गया है? क्या इससे हिन्दू-समाज की सेवा होगी? क्या ऐसा करने से हिन्दूधर्म बचा लिया गया? क्या इस तरह हिन्दू-समाज की सेवा हो गई? हिन्दूधर्म और हिन्दू-समाज की विविधता भरे इतिहास के बेशुमार पन्नों को देख जाइये, आपको ऐसे बुरे और धोखे से भरे हुए काम का दूसरा उदाहरण नहीं मिलेगा! यह उस इतिहास पर ऐसा अमिट कलंक है, जो किसी तरह नहीं धुलेगा। हम दुखी हैं, हम भौंचक्के-से हैं, तो क्या हम निराश हो जायँ? गांधीजी का शरीर अब हमें देखने को नहीं मिलेगा, अब हम उनकी आवाज नहीं सुन सकेंगे। मगर क्या वे हमें बेशकीमती मिशाल हमारे लिये नहीं छोड़ गये हैं? अपने मार्ग में आगे बढ़ाने और सहारा देने के लिये क्या उन्होंने हमारी काफी रहनुमाई नहीं की और हमें काफी प्रेरणा नहीं दी है। इस संकट के समय में उनकी ललकार हममें फिर से कर्त्तव्य की भावना जागृत करे। उन्होने मिट्टी में से पौधे पैदा किये। गैरइन्साफी, दमन और गुलामी के खिलाफ अपने जीवन-भर की लड़ाई में उन्होंने अपूर्व हथियारों का कुशलता से उपयोग किया। अच्छाई को कायम करने के लिये हिन्दुस्तान को जैसी ही बहादुरी की, वैसे ही खतरों की, उपेक्षा करने की और उसी तरह नतीजों की तरफ

से बेफिक्र रहने की जरूरत है। गांधीजी ने उसे कायम करने के लिये अपनी जान दे दी। क्या हम गांधीजी का, उनके अवसान के बाद उसी तरह अनुसरण नहीं करेंगे, जिस तरह हम उनके जीते-जी करते थे।

यह क्रोध करने या बदला लेने का वक्त नहीं है, गांधीजी के उपदेश में, इनमें से किसी के लिये भी कोई अवकाश या जगह नहीं है। जरूरत इस बात की है कि हम आत्मा का हनन करनेवाली उस संकुचित साम्प्रदायिकता को जड़-मूल से उखाड़ फेंकने का पक्का निश्चय कर लें, जिसकी वजह से यह पाप संभव हुआ है। गांधीजी के सयासी, सामाजिक या आर्थिक कामों के हमेशा दो पहलू रहे हैं—नकारात्मक और स्वीकारात्मक। बुरी इच्छाओं को अवश्य ही खातमा कर देना चाहिये, ताकि अच्छी भावनाएँ उनकी जगह ले सकें। साम्प्रदायिक अविश्वास और झगड़े खत्म होने चाहिये और आपसी मेल-मिलाप और भाईचारा कायम किया जाना चाहिये। यह गांधीजी की अंतिम इच्छा थी। हमें उनकी यह इच्छा अवश्य पूरी करनी चाहिये। हम उसे पूरी करके रहेंगे।

—नई दिल्ली

मानवता के प्राण गांधी

विश्वविख्यात लेखिका पर्लबक

अमेरिका में पेंसिलवेनिया के निकट देहाती क्षेत्र में एक गाँव है, डेरेक्सीर। वहीं हमारी शान्तिमयी झोपड़ी है। ३१ जनवरी को वह दिन पिछले दिनों की तरह ही प्रारम्भ हुआ। हम सवेरे ही उठने के अभ्यासी हैं, क्योंकि बच्चों को कुछ दूर स्कूल जाना पड़ता है। नित्य की तरह ही आज हम जलपान के लिये मेज के चारों ओर इकट्ठे हुए और साधारण बातचीत करने लगे। खिड़कियों से बाहर घने हिमपात का दृश्य दिख-लाई दे रहा था और आकाश की आभा भूरे रंग की हो रही थी। हमारे बच्चों को शंका हो रही थी, कि कहीं और अधिक हिमपात न हो। एकाएक गृहपति कमरे में आये। उनकी मुख-मुद्रा गंभीर थी। उन्होंने कहा—रेडियो पर अभी एक अत्यन्त भयानक समाचार आया है।

यह सुनकर हम सब उनकी तरफ देखने लगे और तुरन्त ये हृदय-विदारक शब्द सुनाई पड़े—'गांधीजी का देहावसान हो गया।'

मेरी इच्छा है कि भारत से हजारों मील दूर स्थित अमे-रिका निवासियों पर गांधीजी की मृत्यु से जो प्रतिक्रिया हुई, उसे भारतवासी जानें। हमलोगों ने हृदय को दहला देने-

वाला यह संवाद सुना। यह साधारण मृत्यु नहीं है। गांधीजी शान्ति की प्रतिमूर्ति थे और उन्होंने अपना सारा जीवन अपने देश की जनता की सेवा के लिये लगा दिया था। ऐसे शान्तिप्रिय व्यक्ति की हत्या कर दी गई। मेरे दस वर्ष के छोटे बच्चे की आँखों में आँसू छलकने लगे और उसने कहा—'मैं चाहता हूँ कि यदि बन्दूक बनाने का आविष्कार ही न हुआ होता तो बड़ा ही अच्छा था।'

हमलोगों में से किसीने भी कभी गांधीजी को नहीं देखा था, क्योंकि जब हमलोग भारतवर्ष में थे तब गांधीजी सदा जेल में ही थे। फिर भी हम सभी उन्हें जानते थे। हमारे बच्चे गांधीजी की आकृति से इतने परिचित थे, मानों गांधीजी स्वयं हमारे साथ घर में ही रहते थे। हमारे लिये गांधीजी संसार के इनेगिने महात्माओं में से एक महात्मा थे। पृथ्वी के उन गिनेचुने वीरों में से वे एक थे, जो अपने विश्वास पर हिमालय की तरह अटल और दृढ़ रहते थे। उनके सम्बन्ध में हमारी धारणा भी वैसी ही अटल है।

उनकी मृत्यु का समाचार सुनने के बाद हम परस्पर गांधी-जी के जीवन और उनकी मृत्यु से होनेवाले सम्भावित परि-णामों के सम्बन्ध में बातचीत करने लगे।

हमें भारतवर्ष पर गर्व है कि महात्मा गांधी-जैसे महान् व्यक्ति भारत के अधिवासी थे। पर साथ ही हमें खेद भी है कि भारत के ही एक अधिवासी ने उनकी हत्या की। इसी

प्रकार दुखी और संतप्त हमलोग चुपचाप अपने दैनिक कार्य्यों में लग गये।

भारतवासी सम्भवत: यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि हमारे देश में गांधीजी का यश कितने व्यापक रूप में फैला था। वे यह जानकर आश्चर्यान्वित होंगे। मैं उनकी मृत्यु के एक घंटे के बाद सड़क से होकर कहीं जा रहा था कि एकाएक एक किसान ने मुझे रोका और पूछा—"संसार का प्रत्येक व्यक्ति सोचता था कि गांधीजी एक उत्तम व्यक्ति थे, तो फिर लोगों ने उन्हें मार क्यों डाला ?"

मैंने अपना सिर धुना और कुछ बोल न सकी। उसने संकेत से कहा कि 'जिस तरह लोगों ने महात्मा ईसा को मारा था उसी तरह लोगों ने महात्मा गांधी को मार डाला।'

उस किसान ने ठीक ही कहा था कि महात्मा ईसा की सूली के अतिरिक्त संसार की किसी भी घटना की महात्मा गांधी की गौरवपूर्ण मृत्यु से तुलना नहीं हो सकती। गांधीजी की मृत्यु उन्हीं के देशवासी द्वारा हुई। यह ईसा के सूली पर चढ़ाये जाने के बाद दूसरी ही वैसी घटना है। संसार के वे लोग जिन्होंने गांधीजी को कभी नहीं देखा था, आज उनकी मृत्यु से शोकसंतप्त हो रहे हैं। वे ऐसे समय में मरे जब उनका प्रभाव दुनिया के कोने-कोने में व्याप्त हो चुका था।

कुछ दिनों से अमेरिकानिवासियों में महात्मा गांधी के प्रति

बढ़ती हुई श्रद्धा का अनुभव हम कर रहे थे। महात्मा गांधी के प्रति लोगों में अगाध श्रद्धा थी।

महात्मा गांधी के प्रति जनता में वास्तविक आदर था और हमलोगों को यह प्रतीत होने लगा था कि वे जो कुछ कह रहे थे वही ठीक था।

आज अपने देश के अति उन्नत सैनिकी-करण के मध्य हमारी दृष्टि गांधी की ओर जाती थी और यह प्रतीत होता था कि (युद्ध नहीं, बल्कि शान्ति का) गांधी का मार्ग ही ठीक है। हमारे समाचारपत्रों ने गांधी को इस नई शक्ति को पहचाना। भारत के इस महान व्यक्ति के कारण अन्य देशों में प्रतिष्ठा बढ़ी। महात्मा गांधीजी के नेतृत्व में होनेवाले भारतीय स्वातंत्र्य युद्ध की ओर हमारी दृष्टि गई, क्योंकि उनका ढंग राष्ट्रों के बीच के मतभेदों को शान्तिपूर्ण ढंग से तय करने का था।

मै चाहता हूँ कि भारत के प्रत्येक नरनारी के हृदय में विश्वास करा दूँ कि उनके देश को अब अन्य देशवासी क्या समझते हैं। आज भारत केवल भारत ही नहीं है, वरन् वह संसार की मानव जाति का प्रतीक है।

चर्चिल और उनके समान अन्य व्यक्ति हमें बताते रहे कि यह आवश्यक नहीं है कि दुनिया के सभी लोग स्वतंत्र हों। इन लोगों का कहना है कि जगत को यह जान लेना चाहिये कि कुछ थोड़े बलवान और शक्तिशाली व्यक्ति ही विश्व पर शासन कर सकते हैं।

कुछ लोग कहते हैं कि कोई शासक तो अवश्य ही होगा और यदि हम स्वयं शासित होना नहीं चाहते हैं, तो हमें शासक होना चाहिये। लेकिन हम इस बात पर विश्वास नहीं करते। हम तो ऐसे संसार की कल्पना कर रहे हैं, जिसमें जनता स्वयं अपना शासन चलाने के लिये स्वतंत्र रहे। हमारे लिये उस काल्पनिक संसार का प्रतीक भारतवर्ष है। हम प्रति दिन भारतीय समाचारों के लिये, समाचारपत्रों को बड़ी उत्कंठा से आँखें फाड़-फाड़कर देखते हैं। श्रीचर्चिल ने जिस रक्त-स्नान की धमकी दी थी, वस्तुतः क्या वह घटना सत्य होगी ? क्या यह सत्य है कि लोग अपने मतभेदों को शान्ति से न मिटा सकेंगे ? क्या युद्ध सदा होते रहेंगे ?

हम सभी लोगों के लिये—जिनकी धारणा थी कि जनता पर विश्वास करना चाहिये—गांधीजी आशा के केन्द्र थे। यह बात नहीं है कि हम उस क्षीणकाय चश्मेवाले गांधी को भावुकता में आकर कोई देवता समझ बैठे थे। बल्कि हमारा यह विश्वास था और हम आशा करते थे कि गांधीजी ने मानव-जीवन के मौलिक सत्य को प्राप्त कर लिया था। उनकी मृत्यु पराजय है या विजय ? इसका उत्तर भविष्य में भारतवासी विश्व को अपनी भावी गति-विधि से देंगे।

उन लोगों में, जो समझते थे कि गांधीजी सत्य-पथ पर थे, यदि उनकी मृत्यु से नई जागृति, नई चेतना, और नया संकल्प उत्पन्न हो सके, तो यह हमारे और भारत के लिये समान

रूप से लाभदायक सिद्ध होगा, क्योंकि हम मानवता में विश्वास करते हैं। यदि उनकी मृत्यु से हम निराश और पराजित हो गये तो निश्चय ही संसार की मानवता पराजित हो जायगी।

अमेरिका में गांधीजी की मृत्यु का समाचार धक्के की तरह लगी और कुछ क्षणों के लिये लोग स्तब्ध रह गये। लोग एक दूसरे की ओर आश्चर्य से देखने लगे। नेहरूजी भी अभी जीवित हैं, अब ऐसी दुर्घटना न घटेगी। केवल यही नहीं कि पश्चिमी जगत भारत के किसी और व्यक्ति की अपेक्षा नेहरू को अधिक जानता है; बल्कि वह नेहरू की बुद्धिमत्ता, योग्यता और धैर्य पर विश्वास भी करता है। भारत में इतना वर्ग-भेद नहीं हो जायगा, जिससे निराशा और पराजय के कारण लोग नेहरू को पदच्युत कर दें, यदि ऐसा हुआ तो भारत को बड़ी हानि होगी और वह पश्चिमी जगत की दृष्टि में नितान्त गिर जायगा।

बुद्धिमान भारतीय ऐसी गलती करने के पूर्व अच्छी तरह सोचेंगे। मैं न केवल एक साधारण अमरीकन की दृष्टि से कह रही हूँ, बल्कि भारत के सम्बन्ध में जो कुछ भी जानती हूँ कि भारत अपने लिये क्या करना चाहता है, तथा नेता के रूप में ससार के लिये क्या कर सकता है। इसी दृष्टि से मेरा उक्त विचार है।

भारत का भाग्य अधर में दोलायमान हो रहा है। भारतीय अपनी वर्ग-भेद की भावना को मिटाकर अपने विशाल हृदय, सत्यनिष्ठ नेताओं के आदेश पर चले और संकुचित विचारवाले उन्नति से बाधक नेताओं से बचे, तभी उनका कल्याण होगा।

संसार को महात्मा गांधी की देन

(पं० कृष्णदत्त पालीवाल)

हिन्दुस्तान के बापू और दुनिया के मसीहा महात्मा गांधी ने बीसवीं सदी और दुनिया को, सत्य और अहिंसा के जो दो संजीवन मंत्र दिये थे उनमें से सार्वजनिक जनान्दोलनों में अहिंसा की गतिशीलता, उसकी अमोघ शक्ति को देख कर सारा संसार चकित रह गया है।

जब महात्मा जी ने राजनीति में अहिंसा का समावेश किया तब तो देश में लगभग सभी राजनैतिक नेता और विचारक उसमें अविश्वास रखते थे तथा उसकी आलोचना करते थे और आप लोग उस समय तक अहिंसा में अविश्वास करते रहे जब तक कि १६३१ में गांधी-इर्विन-समझौते के रूप में उसके देश-व्यापी चमत्कार को नहीं देख लिया। कुछ लोग तो अब भी अहिंसा के तीव्र और कटु आलोचक हैं।

यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि हिंसा इंसान की प्राकृतिक और परम्परागत प्रवृत्ति है। वह तो इंसानों को हैवानों से विरासतन मिली है लेकिन अहिंसा एक तो वैसे ही दैवी संपत्ति है दूसरे कृष्ण और बुद्ध व ईसा के अहिंसा सम्बन्धी उपदेशों के होते हुए भी सार्वजनिक तथा राजनैतिक और सामाजिक जीवन में उसका प्रयोग एक मात्र महात्मा गांधी

का अपना आविष्कार था। और नई बात तथा आविष्कारों की प्रारम्भिक अवस्था में उनका विरोध तथा आलोचना का होना स्पष्टतः स्वाभाविक है।

इन सब बातों के होते हुए भी अहिंसा के चमत्कार १९२०-२१ में ही दिखाई देने लगे। महात्मा गांधी ने कहा था कि लोकमान्य तिलक की चिता की राख से अहिंसा का जन्म हुआ। यह पंजाब-हत्याकांड, खिलाफत तथा स्वराज्य के लिये शुरू किया गया था। पंजाब-हत्याकांड से तमाम हिन्दुस्तान गुस्से से भरा हुआ था, लेकिन किसीको कोई रास्ता नहीं दिखाई देता था कि क्या किया जाय। इसी अंधेरे और सियासी बेबसी की हालत में महात्मा जी ने अहिंसा के प्रकाशपुंज और असहयोग के आत्मावलम्बन से देश भर को जगमगा दिया। साल भर में कांग्रेस के करोड़ों मेम्बर बन गये। तिलक-स्मारक-फंड के लिये एक करोड़ रुपया इकट्ठा हो गया। जनता ने आशा, साहस और आत्म-विश्वास तथा अपरिमित बल पाया।

उसी समय दुनिया के दूसरे देशों का ध्यान भी महात्मा गांधी के बताए हुए नए रास्ते की तरफ गया। मिश्र, सीरिया, जर्मनी इत्यादि में वहाँ की पीड़ित जनता ने उसका सहारा लिया।

हिन्दुस्तान में तो यह हालत हुई कि अहिंसा की मुकाबिलेबाजी करनेवाले तथा लड़ाकू कौमों तक की बरबस अहिंसात्मक

सत्याग्रह से अपने मक़सद पूरे करने पड़े। मराठों ने अहिंसात्मक सत्याग्रह किया। सिखों ने गुरुद्वारे के सुधार में अहिंसात्मक सत्याग्रह से ही सफलता पाई। सरहद के पठानों ने भी बादशाह खां, सरहदी गांधी की रहनुमाई में अहिंसात्मक सत्याग्रह से ही सरहदी सूबा में शासन सुधार प्राप्त किये। हिन्दूसभाई और आर्यसमाजियों को भी हैदराबाद में अहिंसात्मक सत्याग्रह की शरण लेनी पड़ी। अहिंसा की शराफ़त के खिलाफ बतानेवाले मुस्लिम लीडरों को भी लखनऊ में तबर्रा और मदहेसहाबा का निबटारा करने के लिये अहिंसात्मक सत्याग्रह के सिवा दूसरा रास्ता नहीं सूझा। न शियाओं को, न सुन्नियों को। १६४२ की सफल जनक्रांति अहिंसा की जीती-जागती यादगार बन गई। लार्ड माउंटबैटन को १४ अगस्त को यह कहना पड़ा कि दुनिया की तवारीख में अहिंसा द्वारा स्वाधीनता प्राप्त करने का यह पहला उदाहरण है।

सच बात यह है कि २० वीं सदी में दुनियां भर की पीड़ित जनता के पास अहिंसा के अमोघ अस्त्र के अलावा शासक और शोषक वर्ग तथा सत्ताधारियों का सामना करके अपने अधिकार प्राप्त करने के लिये और कोई रास्ता नहीं रह गया था, क्योंकि वैज्ञानिक आविष्कारों से सरकार को, शोषक वर्गों को, सभी जगह संघारण शक्ति जनता के मुकाबले बेतहाशा बढ़ गई थी। शासक-वर्ग, शोषक-दल तथा सत्ताधारियों की इस ताकत की वजह से दुनिया भर में हर मुल्क में जनता के

लिये सरकारों का मुकाबला करना गैर-मुमकिन हो गया है। जे० एन० ब्लेड नाम के एक पाश्चात्य लेखक ने अपनी एक किताब में लिखा है कि अब हिंसा द्वारा ताकत हथियाने का सिद्धांत बिल्कुल बेकार है। कम्युनिस्टों की ही उम्मीद बेकार गई कि फौजें जनता में मिल जायँगी। चूंकि लड़ाई का आखिरी फैसला अब जहाजों के हाथ है और हवाई जहाजों में सरकारें बीच के दरजे के फिरके के लोगों को भरती करती हैं और ये लोग मार्क्सवाद के खिलाफ हैं।

अणुबम की वजह से तो पब्लिक के लिये हिंसा के जरिये सरकार का मुकाबिला करना और भी गैर-मुमकिन हो गया है। अणुबम का मुकाबिला पब्लिक की कोई भी पार्टी हिंसा के जरिये कैसे कर सकती है? विज्ञान की वजह से जो यह ताकत का हेर-फेर हो गया है, इससे सरकारों की संहारक शक्ति इतनी ज्यादा बढ़ गई है कि पब्लिक के लिये लोकतंत्र की जनता के राज की रक्षा करना बिल्कुल गैर-मुमकिन हो गया है।

आज की दुनिया में पब्लिक की इस बेबसी की वजह से उसके पास शासकों, शोषकों और सत्ता-धारियों का मुकाबला करने के लिये महात्मा जी के बताये हुए अहिंसा के रास्ते के अलावा दूसरा कोई रास्ता ही नहीं है। इसीलिये महात्मा गांधी ही आज सारे संसार के त्राता हैं। दुनिया भर के जन-संग्रामों के वे ही एक मात्र सेनानायक हैं। दुनिया भर के लिये बीसवीं सदी के युगनिर्माता थे। जिस तरह से मार्क्सवाद

१९ वीं सदी की युगधारा थी, उसी तरह गांधीवाद २० वीं सदी की युगधारा है।

इसके अलावा हिंसा से कभी कोई समस्या हल नहीं होती। हिंसा से पाई हुई कामयाबी चन्दरोज़ा और धोखे की टट्टी साबित होती है। आल्डस हक्सले नाम के नामी विद्वान ने अपनी साध्य-साधन नामक पुस्तक में लिखा है कि फ्रांस के लुई राजवंश की हिंसा में फ्रांसीसी राज्यक्रांति की हिंसा पैदा हुई। रूस के जार की हिंसा से बोल्सेविकों की हिंसा पैदा हुई। कम्युनिस्टों की हिंसा से फासिस्टों और नात्सियों की हिंसा पैदा हुई। १९१४-१८ वाली दुनिया की पहली लड़ाई में हारा हुआ जर्मनी १९३९ में फिर लड़ने को उठ खड़ा हुआ। और कौन कह सकता है कि आगे क्या होगा ? दूसरा संसार-व्यापी युद्ध पूरी तरह खत्म भी नहीं होने पाया था कि तीसरे युद्ध की चर्चा होने लगी और दिन पर दिन बढ़ती जाती है। यानी हिंसा से सिवा सबकी तबाही और बरबादी के किसी-को कुछ फायदा नहीं होता है।

अँगरेजों में एक कहावत है कि पब्लिक की याददाश्त बहुत थोड़े दिनों की होती है। वह पिछले नुकशान को बहुत जल्दी भूल जाती है, अगर कहीं याद रहे तो वह भूलकर भी हिंसा और लड़ाई का नाम न ले।

महात्मा गांधी ने हमें यह भी बताया है कि अहिंसा कमजोरों का नहीं—बहादुरों का हथियार है। जाहिर है कि हथियार

लेकर किसी को मारने में ऐसी क्या बहादुरी है, बहादुरी तो जान बूझकर बिना डरे मौत का मुकाबला करने में है। जबतक हमारे देश में महात्मा जी ने अहिंसा का प्रचार नहीं किया था, उससे पहले बहादुर पंजाब में—गलियों में पेट के बल रेंग कर चलने के हुक्म की मुखालफत एक भी बहादुर सिपाही ने नहीं की थी, जबकि महात्माजी की अहिंसा की नसीहत के बाद मुल्क में ऐसे हजारों निकलेंगे जो इस तरह के हुक्म मानने के पहले गोली या फांसी का शिकार होना खुशी से पसन्द करेंगे।

आत्मबल अणुबम से अधिक होता है।

पिछली लड़ाई में यह भी देखा गया कि ज्यादा हिंसा से मुकाबला होने पर भी सभी हथियार डाल देते थे, चाहे वह अमेरिकन हो या अँगरेज, फ्रांसीसी हो या रूसी अथवा जर्मन हो या जापानी। लाखों की तादाद में सबके सब हथियार डालते देखे गये हैं। जबकि महात्मा गांधी के शब्दों में सच्चा सत्याग्रही कभी हथियार नहीं डालता है। वह हमेशा प्रेमिका माशूका की तरह मौत का स्वागत और आलिंगन करने को तैयार रहता है। अकेला एक सत्याग्रही सारे संसार का सामना करने को तैयार रहता है उसका आत्मबल, अणुबम से भी अधिक होता है।

हिंसा से होनेवाली बुराइयों को देखने के लिये हमें लड़ाइयों और इतिहास की तरफ जाने की भी कोई जरूरत नहीं। पिछले दिनों में हमारे ही मुल्क के भाई के खून से भाई के हाथ

रंगे जाने का जो शर्मनाक और दर्दनाक कांड हुआ है वही क्या कम है। उससे किसीका क्या फायदा हुआ? क्या हिन्दू दब गये या सिख या मुसलमान? क्या हिन्दू मर गये या सिख या मुसलमान? क्योंकि मरने से पहले जो मर गये थे वे तो जिन्दा नहीं हुए। नये जरूर और मारे गये। आज भी हिन्दू, सिख व मुसलमान तक की बहन व बेटियों को जो पिशाच भगा ले गये हैं उनके साथ क्या बीतती होगी। इसका ख्याल करते ही रोम रोम क्रोध, शोक और शर्म से काँपने लगता है। कभी अखबारों में जो बीभत्स तथा लोमहर्षण तथा रोमांचकारी समाचार निकल जाते हैं उन्हें पढ़कर तो आँखों में खून आ जाता है। ये नर-पिशाच यह भी नहीं सोचते कि इसी तरह इनकी बहन-बेटियों पर भी बीत रही होगी।

संक्षेप में, आज के अंतर्राष्ट्रीय संसार में स्थायी शान्ति–वास्तविक लोकतंत्र और सच्ची स्वाधीनता की स्थापना के लिये सिवा अहिंसा के और कोई उपाय नहीं है। अहिंसा ही उनका एकमात्र तथा सर्वोत्तम उपाय है। इसलिये महात्मा गांधी बीसवीं सदी के मसीहा हैं। दुनिया भर के मसीहा सब देशों और सब युगों के मसीहा हैं। लोकतंत्र और जनतंत्र तो अहिंसा के बिना जिंदा ही नहीं रह सकता। हिंसा की आबोहवा से तो उसका दम घुट जाता है।

महात्माजी की अहिंसा केवल हिंसा का भाव किसीको न मारना ही नहीं है। वह सिर्फ किसीकी आत्मा को दुःख व

पहुँचने तक ही महदूद नहीं है। वह तो प्रेम का दूसरा नाम है। हर इन्सान दूसरे इन्सान से, हर धर्म दूसरे धर्म से, हर कौम दूसरी कौमों से नफरत करना छोड़कर मुहब्बत करे, यह अहिंसा है। इसी अहिंसा से आज के इन्सान के—उसके समाज और उसकी दुनिया में, उसको एक दुनिया और भाईचारे के—सपने पूरे होंगे। ठीक उसी तरह जिस तरह हिन्दुस्तान में उसकी आजादी का सपना पूरा हुआ।

आजाद हिन्दुस्तान में हम अपनी जवानी में गाये हुए गीतों में 'हिन्दू मुसलिम सिक्ख ईसाई, बौद्ध पारसी जैनी भाई' इस गीत को खास खास तौर पर पूरा कर दिखावें और इस तरह दुनिया भर के लिये हिन्दुस्तान को नमूना बनाकर उस पाक काम को पूरा करें जिसके लिये महात्मा गांधी कुरबान हुए। हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान एक दूसरे की इज्जत करते हुए, एक दूसरे से मुहब्बत करते हुए सगे भाइयों की तरह रहें। इसीसे महात्मा जी की जिन्दगी का काम पूरा होगा। यही उनकी सच्ची यादगार होगी। इनसे उनके बताये हुए अहिंसा मंत्रकी सिद्धि होगी। इसी से श्रेणीहीन शोषणरहित नवीन सुन्दर संसार और मानव-समाज का नव निर्माण होगा! सत्य और अहिंसा से ही वर्तमान अंतर्राष्ट्रीय संसार की समस्त जटिल समस्याएं सुलझ जायेंगी। अहिंसा में ही इतनी गतिशीलता, इतना विपुल भंडार है कि वह समस्त संसार को एक और प्रकाशमान तथा मानवमात्र को शक्तिशाली कर सके।

संसार भर के समस्त प्रगतिशील और विवेकशील कर्मठ क्रान्तिकारी कार्यकर्त्ताओं का परम पावन कर्त्तव्य है कि वे महात्मा गांधी की जय, गांधीवाद जिन्दावाद के नारे लगाते हुए रण-हुँकारों से पृथ्वी और आकाश को गुंजादें तथा संकीर्ण साम्प्रदायिकता और जड़ता तथा पशुता के खिलाफ जिहाद बोल दें, धर्मयुद्ध छेड़ दें।

यह याद रखें कि जिस तरह ईसा मसीह के बलिदान के बाद संसार ने उनके मत को ग्रहण किया उसी तरह महात्मा गांधी की कुरबानी के बाद संसार उनके मार्ग को, गांधीवाद को-सत्य और मुहब्बत के उनके पैगाम को और उनके संदेश को अपना लेगा।

पृथ्वी पर स्वर्ग लानेवाले बापू

(डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन)

भूतल पर मनुष्य जीवन की कथा में सबसे बड़ी घटना उसकी आधिभौतिक सफलताएँ अथवा उसके द्वारा बनाये और बिगाड़े हुए साम्राज्य नहीं बल्कि सचाई और भलाई की खोज के पीछे उसकी आत्मा की हुई युग-युग की प्रगति है। जो व्यक्ति आत्मा की इस खोज के प्रयत्न में भाग लेते हैं वह मानव-सभ्यता के इतिहास में अमर हो जाते हैं। समय महान वीरों को अन्य अनेक वस्तुओं की भांति बड़ी सुगमता से भुला चुका है। परन्तु सन्तों की स्मृति आज भी कायम है। गांधी की महत्ता का कारण उनके वीरतापूर्ण संघर्ष इतने नहीं जितना कि उनका पवित्र जीवन था और वह भी ऐसे समय में जब कि विनाश की शक्तियाँ प्रबल होती दीख रही हैं। वे आत्मा की सृजन करने तथा जीवन देने की शक्ति पर जोर देते थे।

राजनीतिज्ञ लोग आम तौर पर धर्म की गहराई में नहीं जाते, क्योंकि एक जाति का दूसरी जाति पर राजनीतिक आधिपत्य और निर्बल तथा निर्धन मनुष्यों का आर्थिक शोषण आदि जो लक्ष्य राजनीतिज्ञों के सामने रहते हैं वे धार्मिक लक्ष्यों से स्पष्ट ही इतने भिन्न तथा असम्बद्ध हैं कि वे लोग इनपर

260

गम्भीरता से और ठीक ठीक चिन्तन कर ही नहीं सकते, परन्तु गांधी जी के लिये तो सारा जीवन ही एक और अभेद्य वस्तु था।

अनुभव की अग्नि-परीक्षा में वह न राजनीतिज्ञ थे न सुधारक, न दार्शनिक थे न आचार-शास्त्री, बल्कि इन सबका सम्मिश्रण थे। वह वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति थे। उनमें उच्चतम मानवीय गुण भी था। ईश्वर के सम्बन्ध में हमारी जो भी सम्मति हो, इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि गांधी जी के लिये वह बड़े महत्व का और परम सत्य था। वह उनका ईश्वर विश्वास ही था जिसने ही उनको वह मनुष्य बना दिया जिसकी शक्ति, भावना और प्रीति का हम सब बार-बार अनुभव करते थे। वह ऐसी सत्ता का अनुभव करते थे जो उनके निकट ही थी। एक आध्यात्मिक सत्ता थी जो उनके मनको मथती थी, क्षुब्ध करती थी और हावी हो जाती थी। जिससे उनकी वास्तविकता का निश्चय होता है। बार-बार जब सन्देह और संशय से उनका मन अस्थिर होता था तब वह उसे ईश्वर के भरोसे छोड़ देते थे। यह पूछा जा सकता है कि ईश्वर से उनको उत्तर मिलता था या नहीं ? हाँ भी और नहीं भी। नहीं, इसलिये कि गांधी जी को छिपी से छिपी या दूर से दूर कोई वाणी कुछ सुनाई नहीं पड़ती। हाँ, इसलिये कि उनको उत्तर मिला-सा जान पड़ता था।

गांधी जी मानवजाति के प्रमुख सेवियों में से थे। बिल्कुल सामने ही खड़ी आपत्तियों को देखते हुए वह सुदूरवर्ती भविष्य

की कल्पना से संतुष्ट नहीं हो सकते थे। वह तो बुराइयों के सुधार और आपत्तियों के निवारण के लिये दृढ़ विश्वास वाले व्यक्तियों के साथ मिलकर यथासम्भव प्रत्यक्ष तथा सीधे उपायों द्वारा काम करना पसंद करते थे। प्रजातंत्र उनके लिये वाद-विवाद की वस्तु नहीं, एक सामाजिक वास्तविकता थी। दक्षिण अफ्रिका और भारत की तमाम सार्वजनिक कार्रवाइयाँ तभी समझ में आ सकती हैं जब हम उनके मानव-प्रेम को जान लें।

गांधी जी मानवीय स्वतंत्रता के महान रक्षक थे। गांधी जी आध्यात्मिक शस्त्रों का प्रयोग करते थे। भारत में सब से बड़ी शान्तिरक्षिणी शक्ति वही थे। आज के भारत का प्रतिनिधित्व एक ऐसा नेता कर रहा था जिसमें जातिद्वेष अथवा वैयक्तिक ईर्षा का लेश भी नहीं था और जो अपने देशवासियों को भी बलप्रयोग का आश्रय लेने से रोकता था। अहिंसा परमो धर्मः यह महाभारत का वाक्य सर्वविदित है। जीवन में इसका प्रयोग ही सत्याग्रह या आत्मशक्ति है। सत्याग्रह की शक्ति वास्तविकता की जड़, आत्मा के आन्तरिक बल में जमी हुई है। सत्याग्रह में हिंसा से बचते रहने का निष्क्रिय धर्म नहीं बल्कि भलाई करने का सक्रिय धर्म भी है। प्रेमप्रणाली का प्रयोग अब तक कहीं-कहीं कुछ व्यक्तियों ने निजी जीवन में ही करके देखा था। परन्तु गाँधी जी की परम सफलता यह है कि उन्होंने इसे सामाजिक तथा राजनीतिक मुक्ति की योजना बनाकर दिखा

दिया। उनके नेतृत्व में दक्षिण अफ्रिका और भारत में संघटित समुदायों ने अपनी शिकायतें दूर करने के लिये बड़े पैमाने पर प्रयोग में लाकर देखा था। राजनीतिक उद्देश्यों की सिद्धि के लिये शारीरिक हिंसा का सर्वथा परित्याग करके राजनीतिक क्रान्ति की यह योजना या विधि भारत की आध्यात्मिक परम्परा को हानि नहीं पहुँचाती, बल्कि उसी में से जन्मी है। गांधीजी ऐसे दुर्लभतम धार्मिक पुरुष थे, जो जोशीले देशभक्तों की सभा में खड़े होकर भी कह सकते थे कि यदि आवश्यकता हुई तो मैं सत्य पर भारत को भी निछावर कर दूंगा। धार्मिक पुरुष का लक्ष्य अपने आदर्श को व्यावहारिक भाग तक उतार देना नहीं बल्कि व्यवहार को आदमी के नमूने तक चढ़ा देना होता है। धार्मिक पुरुष के लिये सभ्यता और राष्ट्रहित के विचार अप्रासंगिक हैं। प्रेम कोई नीति या हिसाब का विषय नहीं। जो लोग निराश हो चुके थे कि वर्तमान संसार की हिंसा को रोकने का केवल बचकर भाग निकलने या नष्ट हो जाने के सिवा कोई उपाय नहीं, उनसे गांधी जी कहते थे कि एक उपाय है, और वह हम सबकी पहुँच में है, वह है प्रेम का सिद्धान्त, जो कि अनेक अत्याचारों में भी मनुष्य की आत्मा की रक्षा करता आया है। युद्धकाल में न्यूयार्क टाइम्स के एक संवाददाता ने जब गांधी जी से संदेश मांगा, तब उन्होंने सब प्रजातंत्र-शक्तियों को एक दम निःशस्त्र हो जाने की सलाह दी थी, और उसे एक मात्र हल बताया था, उन्होंने बताया था कि मुझे यहाँ बैठे-बैठे ही यह

निश्चय है कि इससे हिटलर की आँखें खुल जायंगी और आप निःशस्त्र हो जायगा। संवाददाता ने पूछा क्या यह चमत्कार न होगा। गांधी जी ने जवाब दिया, शायद। परन्तु इससे संसार की उस कत्ले-आम से रक्षा हो जायगी जो अब सामने दीख रहा है। कठोरतम धातु काफी आंच से नरम हो जाती है। उसी प्रकार कठोरतम हृदय भी अहिंसा की पर्याप्त आंच लगने से पिघल जाना चाहिए और अहिंसा कितनी आंच पैदा कर सकती है इसकी सीमा नहीं। अपने आधी शताब्दी के अनुभव में मेरे सामने एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं आई, जब मुझे यह कहना पड़ा हो कि असहाय हूँ, मेरी हिंसा निरुपाय है।

मैंने संसार के विभिन्न भागों की अपनी यात्रा में देखा है कि गांधी जी की ख्याति बड़े से बड़े राजनीतिज्ञों और राष्ट्रों के नेताओं से भी अधिक विश्वव्यापी थी और उनके व्यक्तित्व को किसी भी एक अथवा अन्य सब की अपेक्षा अधिक प्रेम और आदर की दृष्टि से देखा जाता था। उनका नाम इतना सर्वपरिचित था कि शायद ही कोई किसान या मजदूर ऐसा होगा जो उन्हें मनुष्य मात्र का मित्र न समझता हो। लोग ऐसा समझते थे कि वे स्वर्णयुग का पुनरुद्धार करेंगे। गांधी जी बंधनमुक्त जीवन के मंत्रदाता थे। उनकी असाधारण धार्मिक पवित्रता और वीरोचित तेज का कोटि कोटि मनुष्यों पर गहरा प्रभाव था और रहेगा।

बापू जीवित हैं

डा० सुशीला नायर

कहते हैं समुद्र-मन्थन में से अमृत निकला। हीरे जवाहिरात निकले और हलाहल जहर निकला। जहर इतना घातक था कि सारे जगत का नाश कर सकता था। उसे क्या किया जाय। सब इस बारे में चिन्तित थे। शिवजी आगे बढ़े और वह जहर पी लिया। हिन्दुस्तान के समुद्र-मन्थन में से आजादी का अमृत निकला। साथ ही आपस-आपस की मार-काट का, दुश्मनी का, वैर का, हिंसा का जहर भी निकला। गांधीजी ने इसके सामने अपनी आवाज बुलन्द की। लोग अपनी मूर्छा में से चौंके, लेकिन जागे नहीं। पाकिस्तान के लोगों के कानों में भी वह आवाज पहुँची। बापू की आवाज अकेले गगन में गूँज रही थी—"इस आग को बुझाओ, नहीं तो दोनों इस आग में भस्म हो जाओगे"। उनका हृदय दिन-रात पुकारता था, हे ईश्वर इस ज्वाला को शान्त कर, नहीं तो मुझे इसमें भस्म होने दे। मैं इसका साक्षी नहीं बनना चाहता।

जो बापू अनेक उपवासों में से अनेक हमलों से बच निकले थे, वे अपने ही एक गुमराह पुत्र की गोली से न बच सके। पुत्र के हाथ से हलाहल का प्याला लेकर वे पी गये ताकि हिन्दुस्तान जिन्दा रह सके। किसीने कहा, जगत ने दूसरी बार ईसा का सूली पर चढ़ना देखा है।

मुझे जब यह खबर मिली तब मैं मुलतान में थी। बहावल-पुरियों की बापू को इतनी चिन्ता थी कि उन्होंने मुझे लेशली-क्रास साहब के साथ बहावलपुर भेजा था। वहाँ डिप्टी कमिश्नर की पत्नी ने बहुत प्यार से पूछा—"गांधीजी अब कैसे हैं ? हमारे पास कब आवेंगे ?" मैंने कहा—"जब आपकी हुकूमत चाहेगी।"

हर जगह गरीब-अमीर मुसलमान प्यार से गांधीजी की तबियत के बारे में पूछते थे। उनके सवाल होते ! उपवास के बाद गांधीजी को ताकत आई या नहीं ? वे क्या खाते हैं ? वगैरह। उनकी मुहब्बत जाहिर थी। गांधीजी उनके दोस्त हैं, इस बारे में उन्हें शक नहीं था। जिन्हें इस्लाम का पहले नम्बर का दुश्मन मुसलमान—अखबारों ने कहा था, उनके बारे में पाकिस्तान में यह मान देखकर मुझे खुशी हुई। मैंने हर्ष से सोचा, बापू को यह सब सुनाऊंगी, तो उन्हें कितना अच्छा लगेगा ?

और शाम को ६ बजे के करीब डिप्टी कमिश्नर साहब की पत्नी हाँफती हाँफती आई और बोली—"दुनिया किधर जा रही है ? गांधीजी को गोली से मार दिया ! हाथ-पाँव ठंढे पड़ गये। मैं सुन्न बैठ गई। किसी दूसरे ने कहा, "नहीं नहीं यह तो अफवाह है ! हम दिल्ली को फोन करके पक्की खबर निका-लेंगे। घबराइये नहीं। मैंने कहा ! नहीं मुझे लाहौर जाना है। कोई गाड़ी दिलाइये। सच्ची खबर हो या झूठी, मैं जल्दी से जल्दी दिल्ली पहुँचना चाहती हूँ।

डी० सी० ने अपनी मोटर दी। सुनसान सड़क पर मोटर पूरी रफ्तार से चली जा रही थी। आकाश में चाँद निकल आया था। चारों तरफ शान्ति का साम्राज्य था। हृदय से बार बार आवाज निकलती थी, "नहीं, बापू जीवित हैं" बुद्धि कहती थी, चार गोलियाँ चलीं, यह बात बनावटी नहीं हो सकती। मगर मनुष्य निराशा में भी आशा को पकड़े रहने का आदी है। मैंने मन को समझा दिया—चार गोलियां चलीं मगर क्या जाने लगीं या न लगीं। शायद बापू घायल हों भी, मगर वे जीवित हैं। मगर वे जीवित हैं। हृदय कहता है, वे मरे नहीं हैं।

सुबह ६ बजे हमारी मोटर लाहौर पहुँची। किसी से कुछ भी पूछने की हिम्मत न हुई। डर था, कहीं कोई कह न दे कि जो अफवाह सुनी थी वह सच है। आखिर एक दोस्त ने आकर मेरी कल्पना का महल ढा दिया। वे आंसू बहा कर सहानुभूति दिखाने लगे। उनको क्या कल्पना थी कि उनके सान्त्वना के शब्द मुझे कितनी गहरी चोट पहुँचा रहे थे! इतने में रेडियो पर पंडितजी की दुःख भरी आवाज सुनी और मेरी रही-सही आशा भी टूट गई। विश्वास हो गया कि बापू नहीं रहे। अभी तक जो आंसू दबे थे वे थामे नहीं थमे। हम अनाथ बन गये।

हवाई अड्डे पर विमान के इन्तजार में क्षण क्षण सदियों जैसा लगने लगा। वहां हिन्दू मुसलमान सब गमगीन थे। वहां

के अफसरों ने मेरे सुभीते का ज्यादा से ज्यादा ख्याल रखा। उन्होंने कहा हम खुशी से पेशावर से स्पेशल हवाई जहाज बुला लेते। लेकिन उससे आपके वक्त में कोई खास बचत न होगी" लेकिन जब हवाई जहाज आ गया, तो उन्होंने १० मिनट में उसे रवाना कर दिया। पाइलाट भी खूब तेजी से लाया। हम ११। के करीब दिल्ली के वेलिंग्डन हवाई अड्डे पर पहुँच गये। मियां इफ्तिखारुद्दीन भी हमारे साथ आये थे। वे और मैं तुरन्त मोटर में बैठकर बिड़ला भवन की तरफ चले। क़ास साहब सामान के लिये ठहरे। डबडबाई आँखों से मोटर में मियां साहब ने कहा "बापू का खून हम सबके सिर पर है। हम सबके हाथ खून से रंगे हुए हैं।" मुझे कई ऐसी चर्चाओं का ख्याल आया, जिनमें भले लोगों ने बापू की टीका थी कि वे मुसलमानों का पक्षपात करते हैं। अच्छे अच्छे लोग कभी कभी सोचते थे "कहाँ तक मार खाते जाएँ, बापू का बार बार का यह कहना कि बुराई का बदला भलाई से दो, उनके गले नहीं उतरता था।" मैंने सोचा, हममें से सबको कभी न कभी पाकिस्तान की ज्यादतियों का गुस्सा आया था। मन में ख्याल आया था कि लातों के भूत बातों से नहीं मानते। ये सब विचार बापू के खून करने वाले के पक्ष का समर्थन करनेवाले थे। इसलिये बापू का खून हम सबके सिर पर था। खूनी इससे भी आगे गया। जो इन्सान ईंट का जवाब पत्थर से देने से रोक रहा था उसे उसने हटा दिया। क्या बापू के जाने के बाद

हिन्दू-मुसलमानों की आँख खुलेगी ? बापू की बात हम मानेंगे ?

गाड़ी बिड़ला भवन के पिछले दरवाजे से दाखिल हुई। उधर भी बहुत भीड़ थी। दूर से एक ऊँचा फूलों का ढेर दिखा। मैं भीड़ को पूरे जोर से चीरती हुई हाँफती हाँफती वहाँ पहुँची, जहाँ पालकी रवाना होने के लिये तैयार थी। वहाँ सरदार अपने दिवंगत के पाँवों के पास उदास और गम्भीर बैठे थे। उन्होंने मुझे ऊपर चढ़ाया। फूलों में से बापू का चेहरा ही दिखता था। हमेशा की तरह मैंने अपना सर उनकी छाती पर रख दिया। बिना सोचे अन्दर से भावना उठी, अभी बापू प्यार की एक चपत लगा देंगे, पीठ पर जोर की एक थपकी लगा देंगे। मगर मैंने तो उनकी आखिरी थपकी बहावलपुर जाते समय ही ली थी।

सिर के पास मनु और आभा खड़ी थीं। सुशीला बहन ! सुशीला बहन ! पुकार कर वे फूट-फूट कर रोने लगीं। आंसुओं में से मैंने देखा बापू का चेहरा पीला था, पर हमेशा की तरह शान्त था। वे गहरी नींद में सोये दिखते थे। अपने आप मेरा हाथ उनके माथे पर चला गया उनके चेहरे को मैंने छुआ वह अभी भी मुझे गरम लगा, जीवित लगा। मेरा सिर फिर से उनके चेहरे पर झुक गया। माथा उनके गाल को जा लगा। किसी ने पुकारा—अब सब नीचे उतरो।

नीचे सिर की तरफ पंडित जी खड़े थे। दुःख और गम

की गहरी रेखायें उनके चेहरे पर थीं। मुँह सूखा हुआ था। उन्होंने प्यार से हम तीनों को नीचे उतारा। पुराने जमाने में महादेव भाई, देवदास भाई और प्यारेलाल जी तीनों बापू के साथ हुआ करते थे, त्रिमूर्ति कहलाते थे। उसी तरह कुछ महीनों से आभा, मनु और मैं बापू के साथ त्रिमूर्ति सी बन गई थीं। उन तीनों में महादेव भाई बड़े थे और इन तीनों में मैं। दोनों लड़कियाँ दोनों तरफ से मुझे लिपट गईं। एक दूसरे को सहारा देते हुए हम आगे बढ़ीं। बापू चाहेंगे राम-धुन चले, सो राम-धुन शुरू की। लेकिन बहुत चल न सकी। हमारी बहन बार-बार ध्यान खींचती थी, रोना नहीं चाहिये। सिक्ख भाइयों ने गुरु-ग्रन्थ साहब के शब्द बोलने शुरू किये। हम सब उनके पीछे राम नाम बोलने लगे।

कुछ देर बाद हमलोग पीछे बापू की गाड़ी के पास आ गये। उस गाड़ी के स्पर्श में बापू का स्पर्श था। दोनों तरफ लाखों जनता खड़ी थी। हर दरख्त की हर टहनी पर लोग बैठे थे। महात्मा गांधी के जय के नाद से गगन गूंज रहा था। जैसे जीवन में वैसे मृत्यु में, निन्दा और स्तुति से अलिप्त बापू सो रहे थे। जीवन में हमलोगों को चुप कराते थे। जयनाद से भी उनके कानों को तकलीफ पहुँचती थी। वे कानों को उंगलियों से बंद कर लिया करते थे। कान बन्द करने को हमें साथ रूई रखनी पड़ती थी। मगर आज उसकी जरूरत न थी। किसी को चुप कराने की जरूरत न थी। सबकी आंखें गीली थीं। मन में

आया, क्या अपनी भावनाएँ हम आँसू बहाकर धो डालेंगे? क्या जय-घोष करके ही बैठ जायँगे? या क्या ये भावनाएँ कार्य-रूप में भी परिणत होंगी?

शाम को जलूस जमुना जी के किनारे पहुँचा। ईंटों के एक छोटे से चबूतरे पर लकड़ियां रखी थीं। जिस तख्ते पर बापू बैठा करते थे, उसीपर उनका शव था। उसे लाकर लकड़ियों पर रक्खा गया। ब्राह्मण ने कुछ मंत्र पढ़े। हमलोगों ने छोटी सी प्रार्थना की। देवदास भाई ने बापू के पाँव पर सिर रखकर प्रणाम किया। उनके बाद हम सबने प्रणाम किया। हृदय से एक ही पुकार निकल रही थी; बापू मेरे अपराध क्षमा करना। जीवन में कितनी बार आपको सताया। आपको मानवी पिता मानकर आपसे झगड़ा किया। आपके साथ दलीलें कीं। बापू क्षमा करना! क्षमा करना!! क्षमा करना!!! मैं चिता से दूर हटकर बैठ गई। मैं ज्यादा देख न सकी। मन में गीता के ये श्लोक दोहराती रही।

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं, हे कृष्ण·हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात् प्रणयेन वापि ॥१॥
यच्चा वहा सार्थमसत्कृतोऽसि विहार शय्यासन भोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत् क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥२॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभावः ॥३॥
तस्मात् प्रणम्य प्रणिधाय कायं, प्रसादये त्वामहमीश मीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य, सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥४॥

बापू आपने जो अगाध प्रेम मुझपर बरसाया, जो अगाध विश्वास बताया, भूल-पर-भूल क्षमा की; तुच्छ अज्ञान मतिहीन को अपनाया, सिखाया, अपनी बेटी बनाया; उसके लायक बनाया। एक बार बापू ने महादेव भाई से बातें करते हुए कहा था—"सुशीला ने सबसे आखिर में मेरे जीवन में प्रवेश किया, मगर वह सबसे निकट आई। मुझमें समा गई है।" हे प्रभु, उसी समय तूने मुझे क्यों न उठा लिया! उसके बाद सुशीला उनसे दूर चली गई। बापू की बात पर उसके मन में शंका आने लगी, मगर बापू ने धीरज से उसकी शंकाओं का निवारण करने का प्रयत्न किया। उसे अपने से दूर न जाने दिया। एक बार कहने लगे—"तूने Hound of Heaven की कविता पढ़ी है। तू मुझसे भाग कैसे सकती है? मैं भागने दूँ तब न?"

इस नालायक बेटी के प्रति इतना प्रेम! हे प्रभो, जो योग्यता उनके जीवन-काल में मुझमें न थी वह उनके जाने के बाद दोगे!

शव पर चंदन की लकड़ियाँ रखने लगे। सुगंधित सामग्री डालने लगे। मैं जाकर सरदार काका के पास बैठ गई। घुटनों में सिर रख लिया और देख न सकी। सारा जगत चक्कर खा रहा-सा लगता था। भीड़ का जोर से धक्का आया। मनु, आभा, मैं और भाणी बहन पास बैठी थीं। सरदार ने हमें साथ लेकर उस भीड़ में से निकलने की कोशिश की। धक्के पर धक्का आता था। हम गिरते-पड़ते मुश्किल से बाहर निकले। एक मिलिटरी ट्रक में बैठे। ट्रक चली। आभा ने मेरा हाथ

खींचा। दूर से चिता की ज्वाला की लपटें आकाश को जा रही थीं। हृदय पुकार उठा, 'हे प्रभो, इस अग्नि में हमारे दोष, हमारी कमजोरियाँ, भस्म हो जावें, ताकि हम बापू के बताये मार्ग पर दृढ़ता से आगे बढ़ सकें। जिस अग्नि को शान्ति करने में उनके प्राण गये, वह इस अग्नि के साथ शान्त हो! रात को बिड़ला-भवन में जिस गद्दी पर बैठकर बापू काम किया करते थे, उसपर रक्खी बापू की फोटो सामने बैठे, मन में विचार आने लगा—कल सारी रात मोटर में बैठे हृदय से जो ध्वनि निकल रही थी "बापू जीवित हैं—बापू जीवित हैं" वह क्या गलत थी ? वह ध्वनि इतनी स्पष्ट थी, मगर क्या सब कल्पना का ही खेल था! उत्तर मिला "नहीं बापू जीवित हैं। सचमुच जीवित हैं। तुम्हारे एक-एक विचार एक-एक आचार को देख रहे हैं।" दूसरे दिन कास साहब अंग्रेजी कविता की कुछ लाइनें लिखकर दे गये। उनमें आखिरी लाइनों का भाव कुछ ऐसा था—

"याद रक्खो, अब उनके हथियार सिर्फ तुम्हारे हाथ और पाँव हैं। वे देखते हैं। सँभलना कि किस चीज को तुम छूते हो, कहाँ पर कदम रखते हो।"

एक दफा बापू को किसी ने कहा था—"आपके अनुयायियों-रचनात्मक कार्य करनेवालों में कुछ बेबसी-सी पाई जाती है, उनमें वह तेज नहीं, जिससे वे आपका संदेश घर-घर, गाँव-गाँव, देश-भर में पहुँचावें। बापू गम्भीर हो गये। कहने लगे—"हाँ आज वे

नेवस-से लगते हैं। मेरे जीवन में दूसरा रूप हो नहीं सकता। उन सबका व्यक्तित्व मेरे व्यक्तित्व के नीचे दबा हुआ है। वे बात-बात में मुझे पूछते हैं। मगर मेरे बाद मैं आशा रखता हूँ, उनमें वह तेज और शान्ति अपने-आप आ जावेगी। अगर मेरे संदेश में कुछ है तो वह मेरे जाने के बाद मर नहीं जावेगा।"

हमलोगों से एक बार कहने लगे कि वे हमसे क्या-क्या आशाएँ रखते हैं। आगा खाँ महल में उपवास की बातें चल रही थीं। वे न रहे तो हमारा क्या धर्म होगा, हमें क्या करना होगा, वे हमें समझा रहे थे। मुझसे वह चर्चा सहन नहीं हुई। मैं बोल उठी—"नहीं, बापू, यह सब न सुनाइये, हमारी तो यही प्रार्थना है कि आपके देखते-देखते महादेव भाई की तरह हमें भी ईश्वर उठा लें। आपके बाद कुछ भी करने की हमारी शक्ति नहीं।" बापू और ज्यादा गंभीर हो गये। बोले—"महादेव की तरह तुम सब मुझे छोड़ते जाओगे तो मैं कहाँ जाऊँगा! ऐसे विचार करना तुम्हें शोभा नहीं देता। और तुमलोगों में आज शक्ति नहीं, मगर ईसा की मृत्यु के समय उनके शिष्यों में शक्ति थी क्या। दृढ़ विश्वास से, सच्चे हृदय से, जो ईश्वरपरायण होकर कार्य करता है, शक्ति उसे ईश्वर अपने-आप दे देता है। जो अपने-आपको शून्यवत् करके सत्य की आराधना करता है उसका मार्ग-दर्शन प्रभु अपने-आप करता है। क्या हम अपने-आपको शून्यवत कर सकेंगे?"

—मनु गाँधी

महात्मागांधी का अमोघ अस्त्र

लेखक स्व० सी० एफ० एंडरूज

कुछ महीने हुए पिछली बार जब मैंने उन्हें देखा, उस समय कलकत्ते में जो अकस्मात् उनके रक्त का दबाव बढ़ गया था और अधिक दुर्बलता हो गई थी, उससे आरोग्य-लाभ करते हुए वे जुहू में डाक्टरों के आदेशानुसार बिछावन पर पड़े हुए थे। तब से उनका स्वास्थ्य बहुत चिन्ताजनक और उनके रक्त का दबाव अनियमित रहा है। फिर भी ईश्वर ने हमलोगों के लिये और सारी मानवता के लिये उनके प्राणों की रक्षा की है, और हम प्रार्थना करते हैं कि वे और भी दीर्घायु हों, क्योंकि आज संसार में ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं है, जिसपर महात्मा की तरह सारी दुनिया जान देती हो। असहयोग के जमाने में जिन लोगों ने उनकी निन्दा की थी, उन लोगों ने भी अब अपनी धारणा बदल दी है, और इस समय समस्त भारत और ग्रेटब्रिटेन के अधिक-से अधिक अनुदार व्यक्तियों में भी जो एक समान भावना है वह यह है कि विश्व-शान्ति के लिये महात्मा चिरजीवी हों।

१९१३ में जब पहले-पहल उनसे मिला था, उस समय वे भारत से सुदूर दक्षिण अफ्रिका में गये हुए गरीब प्रवासी भारतीय मजदूरों के न्यायोचित अधिकारों के लिये अजेय कठिनाइयों से युद्ध करते हुए वहीं पर थे। प्रायः वे सभी

तामिलनाड से शर्तबन्द मजदूर होकर दक्षिण अफ्रिका गये थे। शर्तबन्दी समाप्त हो जाने के बाद एक अन्यायपूर्ण पोल टैक्स लगाकर उन्हें क्रूरता पूर्वक भारत लौटाया जा रहा था और महात्माजी ने सत्याग्रह से उस टैक्स को हटाने का निश्चय कर लिया था। उन्होंने एक लेखक के शब्दों में 'एक शान्तिपूर्ण सेना लेकर ऐसी अपूर्व युद्ध-यात्रा की' जिसकी तुलना इतिहास में कहीं नहीं है। यह 'सेना' उन शर्तबन्द मजदूरों की थी, जिनमें स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी थे। उनके पास युद्ध के कोई शस्त्र नहीं थे। उनका एकमात्र शस्त्र था अहिंसा।' नेटाल के एक मध्यवर्ती प्रान्त से चलकर वे ड्रेकनबर्ग के ऊँचे पहाड़ों से होते हुए ट्रांसवाल की सीमा तक पहुँच गये। जिस-मार्ग से वे लोग उन पहाड़ों पर गये थे, उसपर मैं भी चला हूँ। जिस समय वे इन पहाड़ों को पारकर रहे थे, उस समय रात में इतनी ठंढक पड़ रही थी कि रास्ते में ही दो बच्चे चल बसे। भिन्न-भिन्न शहरों में जो भारतीय व्यापारी इस 'बेढंगी सेना' (जैसे कि इसका नाम था) के रास्ते में पड़ते, वे इसके लिये भोजन इत्यादि की सामग्रियाँ जुटा देते; किन्तु इतनी बड़ी भीड़ को खिलाना आसान नहीं है, और कितने भूखे ही रह जाते !

जब ये लोग ट्रांसवाल की सीमा पर पहुँचे, उस समय सभी यह जानते थे कि सीमा लाँघते ही वे पकड़ लिये जायेंगे, क्योंकि दक्षिण-अफ्रिका का कानून ही यही था। फिर भी

असाधारण उत्साह और उल्लास के साथ सारी सेना सीमान्त को लाँघ गई। तुरत ही फौज के अफसरों और घुड़सवारों ने उन्हें घेर लिया और आत्मसमर्पण करने को आज्ञा दी। सत्याग्रही होने के कारण उन्होंने बिना किसी संघर्ष के अपने आपको-पुलिस के हाथों में सौंप दिया और अपने महान नेता महात्मा गांधी, उनकी स्त्री कस्तूर बाई और उनके पुत्रों के साथ सभी जेल में ठुंस दिये गये।

तीन महीना बाद मैं दक्षिण-अफ्रिका पहुँचा, उस समय महात्मा गांधी पोलक और कैलेन आदि अन्य नेताओं के साथ छोड़ दिये गये थे, क्योंकि जनरल स्मट्स ने —जो उस समय वहाँ का प्रधान शासक था झगड़े को रोककर शान्ति-स्थापना करने का निश्चय कर लिय था।

अत: उसने महात्माजी का ट्रांसवाल की राजधानी प्रिटोरिया में मिलने के लिये बुलवाया। मुझे भी साथ जाने के लिये कहा गया, और जिस समय रेलवे और सोने की खानों में एक बहुत बड़ी हड़ताल शुरू होने को थी, उसी समय हमलोगों ने साथ ही ट्रेन से प्रस्थान किया। जिस मेल ट्रेन से हमलोग प्रिटोरिया पहुँचनेवाले थे ,वही आखिरी ट्रेन थी, जिसे हड़ताल के दौरान में जाने की अनुमति मिली थी। मुझे अच्छी तरह स्मरण है, आधी रात में जब एक पहाड़ी स्टेशन पर वह ट्रेन एक इंजन जोड़ने के लिये रुक गई थी, हमलोगों ने यह समझ लिया कि हड़ताल शुरू हो गई और अब यात्रा के मध्य में ही

अँटके रहना होगा। किन्तु थोड़ी देर बाद, जो कि उस समय एक युग-सा ही लगा, गाड़ी फिर चल पड़ी। ट्रेन का गार्ड हमलोगों के पास आया और कह गया कि यद्यपि हड़ताल के आधी रात से ही प्रारम्भ होने की सूचना थी फिर भी हमलोगों की ट्रेन प्रिटोरिया पहुँच जाने के लिये छोड़ दी गई है।

जब हमलोग राजधानी पहुँचे, तो बहुत-सी भारी बाधाएँ आ खड़ी हुईं। हड़तालियों ने तार के लाइन काट दिये थे। उन दिनों बेतार तो था नहीं, हमलोग सारे संसार से कटकर अलग हो गये।

हड़ताल के यूरोपियन नेताओं ने महात्मा गांधी से एक परीक्षात्मक अनुरोध किया कि वे भी उन लोगों के साथ हड़ताल में सहयोग प्रदान करें, जिससे विजय निश्चित हो जाय; किन्तु महात्माजी ने बिल्कुल इन्कार कर दिया, क्योंकि उनका सत्याग्रह तो अहिंसात्मक था, और इन यूरोपियनों की रेलवे और सोने की खानों की हड़तालों का हिंसात्मक आधार था।

महात्माजी का हिंसात्मक हड़ताल में—जिसमें उनका लाभ ही दीखता था—सहयोग देना अस्वीकार कर देने का हर जगह बड़ा प्रभाव पड़ा। इसका परिणाम हुआ कि जनरल स्मट्स ने शान्ति का प्रस्ताव रक्खा और जब उसने प्रिटोरिया में महात्माजी को अपने आफिस में मिलने के लिये बुलवाया उस समय बिना सोचे-विचारे उसने कहा—"गांधी, तुम अपनी

सारी शर्तें पेश करो। बताओ, तुम क्या चाहते हो, मैं उसके लिये कोशिश करूँगा।"

सामने ऐसा सुविधाजनक प्रस्ताव रक्खा जाने पर कोई भी दूसरा होता, अधिक-से-अधिक मांगें पेश करता; किन्तु सत्य की मूर्ति गांधीजी ने कम-से कम मांगें रक्खीं। उनकी एक अन्तिम मांग यही थी कि वह तीन पौन्ड का पोल टैक्स (जो दासता का चिह्न था) बिल्कुल हटा दिया जाय। जनरल स्मट्स ने इसे मान लिया और सुलहनामे पर हस्ताक्षर कर दिया।

यह उस महान नाटक के—जिस में महात्मा गांधी ने दक्षिण-अफ्रिका में सत्याग्रह-संग्राम में अजेय बाधाएँ होते हुए भी विजय पाई—अन्तिम दृश्य का प्रारम्भ था। यह भारत और सारे संसार के इतिहास में एक परिवर्तन-विन्दु है, जहाँ से भविष्यत इतिहासकार हिंसा के स्थान पर अहिंसा के आरोहण का उल्लेख करेंगे। इस विचित्र कथा को मैंने बहुत थोड़े में कहा है, केवल यही दिखाने के लिये कि महात्मा गांधी ने इन बीच के दिनों में भी अपने अहिंसा के महान् सिद्धान्त का किस सचाई के साथ पालन किया है। वे दाँये-बाये किसी ओर न घूमकर सीधे अपने अहिंसा के उसी पथ पर अनवरत चलते ही गये हैं।

मेरे सामने टेबुल पर एक छोटी-सी किताब खुली पड़ी है, जिसे उन्होंने १६०८ में लिखा था। इस किताब में उन्होंने अहिंसा के विषय में अपना विश्वास दिखाते हुए लिखा है—

"पशु-बल या गोली-बारूद का प्रयोग करना सत्याग्रह के सिद्धान्त के विरुद्ध है, क्योंकि इसका अर्थ है कि हम अपने विपक्षी को अपने बल-प्रयोग से कुछ ऐसा करने के लिये बाध्य करते हैं, जिसे हम चाहते हैं; किन्तु वह नहीं चाहता। और यदि ऐसा बल-प्रयोग न्याय हो, तो फिर उसको भी हमारे प्रति वैसा ही करने का अधिकार है। और तब आपस में सुलह होना असम्भव है। एक चक्की के चारों ओर घूमते हुए अन्धे घोड़े की तरह हम केवल सोच—भर सकते हैं कि हम प्रगति कर रहे हैं। जिनका यह विश्वास है कि वे अपनी आत्मा के प्रतिकूल कानूनों को मानने के लिये बाध्य नहीं हैं, उनके लिये केवल एक सत्याग्रह का मार्ग खुला है। दूसरा कोई भी मार्ग हो, उसका अन्त होगा विध्वंस।

"सत्याग्रह या दूसरे शब्दों में आत्मा-शक्ति अतुलनीय है। यह बाहुबल से श्रेष्ठ है। तब ऐसी अवस्था में यह केवल दुर्बल का शस्त्र कैसे कहा जा सकता है? भौतिक शक्ति का प्रयोग करनेवालों के लिये वह शक्ति अज्ञात-सी है, जो सत्याग्रही के लिये आवश्यक होती है। क्या तुम विश्वास कर सकते हो कि एक कायर कभी कानून को पसन्द नहीं करने पर भी उसकी अवज्ञा करने का साहस कर सकता है? क्रान्तिवादी पशुबल के समर्थक समझे जाते हैं। तब फिर वे कानून मानने के विषय में बातें क्यों करते हैं? मैं इन्हें दोष नहीं देता। वे और कुछ नहीं कह सकते। जब वे अंगरेजों को भगाने में सफल हो जायँगे और

स्वयं शासक बन बैठेंगे, तब वे चाहेंगे कि हम और तुम सभी उन्हीं के कानून को मानें। और यह उनके विधान के लिये एक उपयुक्त चीज है, किन्तु सत्याग्रही तो यही कहेगा कि वह अपनी आत्मा के विरुद्ध कोई भी कानून नहीं मानेगा, चाहे इसके दण्ड में उसे तोप के मुँह पर रखकर उड़ा ही क्यों न दिया जाय।

"तुम क्या सोचते हो—किसमें अधिक साहस की जरूरत है तोप के मुँह पर किसी को रखकर उड़ा देने में या स्वयं हँसते-हँसते तोप के मुँह पर जाकर उड़वाने में ? सच्चा योद्धा कौन है-जो मृत्यु को अपना अन्तरंग मित्र बनाकर रखता है वह, या जो दूसरों की मृत्यु की व्यवस्था करता है वह ? मेरा विश्वास है कि जिसमें साहस और पुरुषत्व नहीं है वह सत्याग्रही कभी हो ही नहीं सकता।

हाँ, इतना मैं मानूंगा कि शरीर से दुर्बल होकर भी मनुष्य सत्याग्रह कर सकता है। जैसे लाखों सत्याग्रह कर सकते हैं, वैसे एक मनुष्य भी। यह स्त्री और पुरुष दोनों ही के लिये है; इसमें सैन्य-शिक्षण की जरूरत नहीं और न जुजुत्सु की ही आवश्यकता है। इसके लिये केवल मस्तिष्क पर संयम रखना जरूरी है और जब वह हो जाता है, तब जंगल के राजा की तरह मनुष्य स्वतंत्र हो जाता है और केवल उसकी दृष्टि से ही शत्रु थर्रा उठते हैं।

"सत्याग्रह की तलवार की सभी धारें तेज होती हैं। इसका जिधर से चाहें उपयोग कर सकते हैं। जो इसका उपयोग

करता है और जिसके प्रति इसका उपयोग किया जाता है यह दोनों को ही सुखी बनाती है। बिना रक्त की एक बूँद भी गिराये, वह सुदूरव्यापी फल उत्पन्न कर देती है।"

अपने जीवन के इन पिछले दिनों में महात्मा गाँधी ने बुराई से युद्ध करने की इस महान् रीति पर, जो आजीवन उनका मुख्यशस्त्र रहा है और भी अधिक जोर दिया है। इसका अर्थ जितना उन्होंने समझा, उतना शायद और किसी ने नहीं। किन्तु इसके प्रयोग का चमत्कारपूर्ण परिणाम जिन्होंने देखा है (जैसा दक्षिण अफ्रिका में मुझे देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था) वे इस निष्पत्ति पर पहुँचे हैं कि यह संसार की सबसे बड़ी शक्ति है और इतना ही नहीं, यह भी कि वर्तमान युद्ध की जघन्य पाशविकता को जीत सकती है।

जिस तरह युद्ध-द्वारा अनैतिक विरोध के लिये सैन्य तैयार किये जा रहे हैं, उसी तरह शान्ति-द्वारा नैतिक विरोध के सैन्य भी तैयार किये जा सकते तो आधुनिक युद्ध-कला की आसुरिक हिंसा का शीघ्र ही अन्त हो जाता; किन्तु ऐसा विरोध करने की नैतिक शक्ति है हममें ?

गाँधीजी की असंगतियाँ

स्वर्गीय श्रीमहादेव देसाई

गांधीजी के असंख्य और विविध आलोचकों की ओर से उनपर लगाये गये 'असंगति' के आरोपों की सूची इतनी विशाल है कि इस सम्बन्ध में लिखना आसान काम नहीं। इन आलोचकों में ऐसे विदेशी हैं जो गांधी को जानते नहीं, लेकिन सुनी-सुनाई दन्तकथाओं के आधार पर ही निर्णय कर लेते हैं। और ऐसे हिन्दुस्तानी हैं जो उनके लिखे कहे का कुछ-का-कुछ अर्थ लगाते हैं। प्रायः अंग्रेजों के दिल में उनके लिये सम्मान का स्थान है, लेकिन उनकी राय में गांधीजी के उपवासों और असहयोग का उनकी अहिंसा से मेल नहीं खाता। खास करके जब कि इन अस्त्रों का प्रयोग ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो। कुछ हिन्दुस्तानी नेताओं की राय रही है कि गांधीजी को राजनीति से क्या सरोकार—वे तो अपने समाज-सुधार में ही लगे रहें। एक नया समूह ऐसे आलोचकों का पैदा हो गया है जो यह कहता है कि गांधीजी ने पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों से नैतिकताशून्य नहीं तो अनुचित नाता अवश्य जोड़ लिया है।

इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि श्री एच० एल० फिशर-जैसे इतिहासज्ञ ने भी सुनी-सुनाई बातों के आधार पर अपनी 'हिस्ट्री आफ यरोप' में गांधीजी के बारे में लिख दिया

कि वह 'निःसन्देह एक संत होते हुए भी सूदखोरी का विरोधी नहीं है। प्रबल देशभक्त होते हुए भी निम्नतम श्रेणी की सम्पत्ति से लाभ उठाना जानता है और पाश्चात्य सभ्यता का विरोधी होते हुए भी फोर्ड मोटर का उपयोग करता है।"

जीवन में विरोधाभास तो पग-पग पर मालूम पड़ते हैं। मृत्यु हमारे सिर पर नाचती खड़ी रहती है, फिर भी उससे बचने की भरसक कोशिश करते हैं। यह मिट्टी का पुतला छोटा सा शरीर सर्वव्यापी आत्मा का पिंजरा बना हुआ है और इसका बन्दी आत्मा इसकी सहायता से अपनी मुक्ति का प्रयत्न करता है। वेदान्ती संसार भर को माया कहकर भी इसमें लिपटा रहता है।

गांधीजी के जीवन में जो असंगतियाँ कही जाती हैं, वे भी ऐसी ही हैं। आलोचनाओं में कुछ सार नहीं है। लोगों को घटनाओं का ज्ञान नहीं होता और वे सिद्धान्तों को ठीक-ठीक न समझ कर गांधीजी पर उसके भंग का आरोप लगा बैठते हैं। अहमदाबाद में तड़प-तड़प कर मर रहे एक बछड़े को देखकर गांधीजी का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने उसे शान्ति से मृत्यु की गोद में सुला दिया। गांधीजी के लिये यह अहिंसा का नया पग था, पर लोग कहने लगे कि उन्होंने हिंसा करदी।

सन् १९१४ में, महायुद्ध में गांधीजी ने भाग लिया और रंगरूट भर्ती किये। शान्ति वादियों के लिये यह एक अनबूझ

पहेली बनी रही है। लेकिन देखना यह है कि गांधीजी ने किया क्या ? उन्होंने ऐसी किसी को भर्ती होने के लिये नहीं कहा जो सच्चे दिल से युद्ध का विरोधी हो, न वे स्वयं भर्ती हुए। लेकिन जो लोग ब्रिटिश सरकार की छत्र-छाया में जान-माल से अपने आपको सुरक्षित समझते हैं और मरने मारने में जिनको कोई धार्मिक या नैतिक आपत्ति नहीं है, उनके लिये केवल यही मार्ग था कि वे अँग्रेजों की ओर से लड़ते। इसबार की तरह युद्ध उद्देश्य का नैतिक प्रश्न भी उस समय नहीं था। इसलिये अधिक से अधिक उनकी 'अहिंसा' विषयक धारणा को दोषपूर्ण बताया जा सकता है लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि वह अपने ही सिद्धान्तों के विरुद्ध चलते हैं।

रेलवे, मोटर, डाक्टरी दवाइयों आदि के प्रयोग की बाबत बात यह है कि वह अभी वैरागी नहीं बने हैं, सेवा शक्ति को देखते अभी लोग उन्हें वैरागी बनने भी नहीं दे सकते। वह तो किसी पेड़ पर पर्णकुटी बना, दुनिया के शोर गुल से दूर आराम का जीवन व्यतीत कर सकते हैं। लेकिन संसार से वह भाग नहीं सकते। उनका अन्तरात्मा कहता है कि तुमको तो अन्याय और विषमता से लड़ने की शक्ति परमात्मा ने भेंट की है। तुम कैसे भाग सकोगे ? गांधीजी इन आधुनिक साधनों का प्रयोग वहीं तक करते हैं जहाँ तक वे समझते हैं कि मैं उनके अधीन न हो जाउँ। इसमें वे पाप नहीं समझते। जेल में कर्नल मैडक आदि डाक्टरों की सहायता लेने का यही

कारण है। परन्तु यह स्मरण रहे कि चिकित्सा व शाल्य कर्म-कला से उन्हें घृणा नहीं है, इसके विपरीत वह यह मानते हैं कि इस कला के विशेषज्ञ आदि विशुद्ध सेवा भाव से काम करें तो वे मानवता की सच्ची सेवा कर सकते हैं। यह भी ध्यान रहे कि उन्होंने जीवन मरण का संकट उपस्थित होने पर भी डाक्टरों की सलाह मानकर कभी अपने सिद्धान्तों की हत्या नहीं होने दी। जीवित प्राणियों के देह की चीड़ा-फाड़ी, टीका लगाने की प्रथा, प्राणियों के मज्जा से बनी या दूसरी प्राणिज औषधियों के प्रयोग का उन्होंने सदा प्रबल विरोध किया है। रोग की चिकित्सा की अपेक्षा रोग के प्रतिबंध पर वह अधिक जोर देते हैं। अपने साथी ग्रामीणों के लिये उनका औषधालय भी यथासम्भव इसी सिद्धांत के आधार पर है।

शायद कहा जाय कि ये तो "क्षन्तव्य भूले हैं; असहयोग का सिद्धान्त तो सरासर विद्वेष और हिंसा मूलक है। गांधीजी ने स्वयं अपनी अंगुली जलाकर अपनी इस हिमालय जैसी भूलों को माना है लेकिन वे फिर भी अपने इन परीक्षणों से बाज नहीं आते। फिर ऊपर से शान्ताकार सत्याग्रह और असहयोग तो हिंसक साधनों से भी अधिक भीषण है। जिम्मेदार विरोधी तो सत्याग्रह और असहयोग की अपेक्षा अपने विरुद्ध हिंसक अस्त्रों के प्रयोग को बेतरह समझेंगे।" पर वे इसलिये कि हिंसक साधनों का प्रयोग करने वाले विरोधियों का दमन करना उनके लिये आसान है।

२६६

लेकिन हम यह मानते हैं कि असहयोग और सत्याग्रह अहिंसा से दूर है। गांधीजी ने स्वयं घोषणा की है कि जहाँ तक तन, मन और वचन का सम्बन्ध है, इनसे अहिंसा रहित समझना भूल थी अब प्रश्न यह है कि शारीरिक बल-प्रयोग के सिवा फिर और क्या उपाय है ! और यदि हम यह बल-प्रयोग नहीं करते या नहीं कर सकते तो फिर क्या पीड़ित मानव किसी भी उपाय से काम न ले ?

दूसरी ओर उनके अपने देशवासी भाई हैं जो यह दावा करते हैं कि हमारी राजनीतिक विचारधारा गांधीजी की राजनैतिक विचार-धारा से आगे बढ़ी हुई है। गांधीजी का धैर्य्य उन्हें अधीर करता है। वे यह समझते हैं कि साम्राज्यवादी सरकार के साथ सम्मान पूर्ण सहयोग का मार्ग निकालने के लिये गांधीजी हिंसक साम्राज्यवादी के साथ समझौता करते हैं और इस प्रकार अपनी अहिंसा को भूल रहे हैं। ये समालोचक यह भूल जाते हैं कि किसी बीमार की गहरी बीमारी की इलाज कराने के लिये डाक्टर को बीमार से अधिक से अधिक सहयोग करना पड़ता है। अपने विरोधी को बल प्रयोग के बिना, मनाकर अपने साथ करने का तरीका यही है कि उसकी राय बदलने के लिये पहिले उसके साथ चला जाय।

पता नहीं कि श्री फिशर ने गांधीजी के सूदखोरी से प्रेम की दन्त कथा कहाँ से सुनी लेकिन यह तो सब जानते हैं कि कांग्रेसी

सरकारों ने शक्ति हाथ में आते ही इस प्रथा को जड़ मूल से मिटाने की कितनी कोशिश की है। कांग्रेस के सहायकों में महाजनों का होना सर्वथासम्भव है, लेकिन उसे यह सहायता महाजनों की सेवा से प्राप्त हुई है, इसलिये सूदखोरी के विरुद्ध कानून बनाने का कांग्रेस का अधिकार बना ही रहता है। कहा जाता है कि गांधीजी पूंजीपति, मिल-मालिकों के बल पर लड़ते हैं वे मजदूरों के शोषण की परवा नहीं करते। यह कहना सरासर गलत है। मिल-मालिक जानते हैं कि यदि वे कर सकते तो खादी की नरम सी झाड़ू से मिलों को बुहार देते। गांधीजी का अन्तिम लक्ष्य भी उन्हें खूब मालूम है। वे मजदूरों को मिलों का मालिक बने देखना चाहते हैं लेकिन मिल मालिकों की बात सुनने के लिये भी सदा तैयार रहते हैं। गांधीजी ने अपना सिद्धान्त खोकर उनकी सहायता कभी मोल नहीं ली। १६१५-१६ की एक घटना याद रखने लायक है। साबरमती आश्रम उन दिनों मुख्यतः अहमदाबाद के मिल-मालिकों की सहायता से चल रहा था। एक हरिजन परिवार आश्रम में प्रविष्ट हुआ। कट्टर पंथी मिल मालिक नाराज हो गये और उन्होंने एक भी पाई देने से इन्कार कर दिया। आश्रम में अगले दिन को भोजन भी नहीं था लेकिन गांधीजी विचलित नहीं हुये। एक मिल-मालिक जो अबतक आश्रम से उदासीन था, आगे आया और एक बड़ी रकम दे गया। गांधीजी ने अस्पृश्यता स्वीकार करके कट्टर पंथियों की सहायता लेने का कभी प्रयत्न नहीं किया।

साम्राज्यवादी सरकार से सहयोग का भी यही रहस्य है। मालदार वर्गों का हृदय-परिवर्तन हो सकता है तो शासकों का भी हो सकता है।

गांधीजी के युद्ध सम्बन्धी रूख ने आखरी समस्या पेश की है। युद्ध में सहयोग देने के समर्थकों का कहना है कि गांधीजी ने पहिले तो सहयोग का वचन दिया था, लेकिन बाद में अपने अनुवादियों के कहने में आकर सशर्त सहयोग पर आ गये। शान्तिवादियों का कहना है कि उनका सहयोग का वायदा सशर्त या बिना शर्त, अहिंसा सिद्धान्त से मेल नहीं खाता। पहिले महानुभाव यह भूल जाते हैं कि गांधीजी की तात्कालिक घोषणा जिसमें सहायता का वचन नहीं दिया गया बल्कि केवल मित्रराष्ट्रों से सहानुभूति प्रकट की गई थी कि ब्रिटेन न्याय के लिये लड़ रहा है, वह प्रजातंत्र की रक्षा करना चाहता है। लेकिन व्यवहारज्ञ पुरुषों ने ब्रिटेन की नीयत में सन्देह प्रकट किया और बाद के ब्रिटिश राजनेताओं के वक्तव्यों से प्रकट हो गया कि ब्रिटेन साम्राज्य की रक्षा के लिये ही लड़ रहा है। समय पर चेतना मिली और कार्य-समिति ने ब्रिटेन से युद्ध के उद्देश्य को स्पष्ट शब्दों में बयान करने की मांग की और गांधीजी अप्रत्याशित धोखे की मार से बच गये। शान्तिवादियों को गांधीजी ने स्वयं उत्तर दे दिया है। उनका कहना है कि सहयोग दिया जाता तो भी जब कि ब्रिटेन साफ शब्दों में घोषणा कर देता कि हिन्दुस्तान अब से आजाद देश है और

कानून भी यह जल्दी में जल्दी से जल्दी आजाद कर दिया जाता। इस घोषणा के पश्चात् भी जो सहयोग ब्रिटेन को मिलता वह केवल नैतिक होता, हिन्दुस्तान ब्रिटेन की विजय के लिये प्रार्थना करता।

अपनी 'असंगतियों के बारे में खुद गांधीजी ने स्पष्टीकरण किया है।' वह लिखते हैं—अपने वक्तव्यों की संगति मैं किन्हीं पहले वक्तव्यों से नहीं लगाता बल्कि उस सत्य से लगाता हूँ जो इस समय मुझे अनुभव होता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सत्य के मार्ग पर मैं आगे बढ़ता गया हूँ।" यह प्रगति और नई खोज ही अदूरदर्शियों को 'असंगति' मालूम पड़ती है, पर वस्तुतः ये सत्य के ही विभिन्न रूप हैं। सत्य की खोज या विजय मनुष्य की मृत्यु के साथ ही बन्द होती है। फिर यह विजय ऐसी नहीं कि एक बार प्राप्त किये पश्चात् सदा स्थिर बनी रहे। रोम्यां रोला के शब्दों में विजय एक सतत कर्म है। यदि रोज रोज इसकी रक्षा न की जाय तो यह छिन जाती है।

अदम्य आत्मा

ले० स्वर्गीय० रोमाँ रोलाँ

"एक छोटा दुर्बल मनुष्य, काली, कोमल आँखे, बड़ी बड़ी और कुछ बाहर निकली हुई सी, दुबला चेहरा, सरपर एक हल्की उजली चद्दर, शरीर पर सफेद खादी पैर में चप्पल। वह जमीन पर ही सोता है–और बहुत थोड़ा सोता है निरन्तर काम में लगा रहता है। उसके लिये अपने शरीर का कोई महत्व ही नहीं।

वह विनय और आडम्बर शून्य है, यहां कि कभी-कभी जान पड़ता है, कुछ कहते हिचक या डर-सा रहा है। किन्तु फिर भी उसकी आत्मा की अदम्यता छिपती नहीं। वह कभी अपने सिद्धान्तों के साथ समझौता नहीं करता और न गलतियाँ छिपाने की कोशिश ही करता है। वह गलतियाँ को स्वीकार करने से डरता नहीं। वह कूटनीति जानता ही नहीं और उसे सबसे अधिक प्रसन्नता तब होती है, जबकि एकान्त चिन्तन में अपने अन्तर का शान्त मधुर ध्वनि उसे सुनाई देने लगती है।

यही मनुष्य है जिसने ४० करोड़ मनुष्यों में विद्रोह की आग भड़का कर बृटिश साम्राज्य की नींव हिला दी है और जिसने मानव राजनीति में धर्म का वह प्रबल उत्साह भर दिया है जो गत दो हजार वर्षों से और किसी ने नहीं भरा था।"

मानव गांधी

लेखक श्री हेनरी पोलक

आज गांधी के नाम में एक जादू है। असंख्य लोगों के लिये वे महात्मा हैं—एक विशाल आत्मा, जिसमें चमत्कारिक शक्ति; अन्य लोगों के लिये वे एक समाज सुधारक हैं, जिनके लिये अब भी सर्वोत्तम विशेषण 'महाभंगी' होगा; फिर और ऐसे भी हैं जो उन्हें राजनैतिक नेता ही देखते हैं; कुछ उन्हें अहिंसा का ईश्वरीय दूत मानते हैं और कुछ अभी तक उन्हें एक खतरनाक अन्ध विश्वासी कहने की हठ पकड़े हुए हैं। किन्तु जो लोग उन्हें सबसे अधिक काल तक याद रखेंगे, उनके लिये वे अपनी विराट मानवता के कारण ही स्मरणीय रहेंगे।

भूल इन्सान से होती ही है, अतएव उन्होंने अनेकोंबार विनम्रता पूर्वक अपनी भूल स्वीकार की है। क्षमा दिव्य है (गांधीजी ने बहुत कुछ क्षमा किया है) अतएव वे स्वीकार करते हैं कि वे क्षमा की प्रार्थना करते हैं, अपने देशवासियों के आगे भी और विरोधियों के आगे भी।

गांधी जी अपने सहकारियों और अनुयायियों पर कड़ा अनुशासन रखते हैं, किन्तु अपने पर उससे भी कड़ा अनुशासन। दूसरों से अपराध बन पड़ता है तो वे उन्हें आश्वासन देते हैं कि उनकी असफलता इतनी बुरी नहीं है और अगली बार

वे चाहें तो अधिक सफल हो सकते हैं। किन्तु अपनी त्रुटियों और कमजोरियों का बोझ उनके मनपर सदा बना रहता है, और वे अपने भीतर निर्बलता के उद्गम की अनवरत खोज में लगे रहते हैं।

भारत के असंख्य गाँवों में बसे हुये असंख्य निर्धन व्यक्तियों की धीरज से सही हुई यातनायें महात्माजी के दिल को भी दुखाती रहती है किन्तु फिर भी किसी परिस्थिति की विसंगति उन्हें तत्काल दीख जाती है, वे हँस सकते हैं और अपनी हंसी को तबतक जारी रख सकते हैं जब तक कि उनके साथी भी उसमें सम्मिलित न हो जायँ। उनके विनोद शील स्वभाव से बहुधा उन लोगों को खिसिया जाना पड़ता है जो उनके पास बड़ी समस्याओं की चर्चा करने गम्भीर और उदास चेहरा बनाकर जाते हैं और जिन्हें यह कल्पना भी नहीं होती कि उनके आदर की दिव्य वस्तु में मानवता का यह अंश भी है!

पुरानी मित्रताओं को याद रखने में उनकी स्मरण शक्ति की दृढ़ता से अधिक आश्चर्य जनक बात उनकी नये सम्बन्ध कायम करने की क्षमता है।

किन्तु जो लोग प्रारम्भिक जीवन से ही उनके साथी रहे हैं, और जिन्हें अब जीवन का प्रवाह दूसरे कार्य क्षेत्रों में खींच ले गया है, उनके लिये तो अतीत के सुखद अनुभवों की स्मृतियाँ ही आनन्द की वस्तु है।

कभी-कभी मैं सोचा करता हूँ यदि महात्माजी के निकटवर्ती सहयोगी और उनके विरोधी उनकी इस विशद मानवता को अधिक अच्छी तरह समझते होते, तब शायद भारत का इतिहास बहुत भिन्न दिशा में अग्रसर हुआ होता—यदि उनके सहयोगी उनसे बराबरी का सम्बन्ध रखते हुए उनके अधिक समीप आये होते और तर्क-वितर्क द्वारा उन्हें अधिक मजबूत किये होते—यदि विरोधी उनसे अधिक उदार सहानुभूति से और दूरदर्शिता से पेश आये होते—

ऐसा ही कभी मैं सोचता हूँ और तब मैं अपने से प्रश्न करता हूँ क्या व्यक्तियों के भाग्य की तरह देशों और राष्ट्रों का भाग्य भी भूलों और गलतियों और वैमनस्यों के परिणामों पर उतना ही नहीं निर्भर करता, जितना कि इनसे विपरित अवस्थाओं पर ? कौन कह सकता है ?

इसलिये महात्माजी का अपनी मानवीय कमजोरियों और भूलों की चर्चा करते समय ही हमारे लिये अधिक आकर्षण होना स्वाभाविक और उचित ही है। इस प्रकार हम उनके अधिक निकट पहुँचते हैं, एक सामान्य मानवता में उनके साथ सहभागी होते हैं, और उनके उदाहरण से धैर्य पाते हैं—कि इतने अनगिनत भारों से आक्रान्त होकर भी वे अपनी समस्याओं का आशा और साहस के साथ सामना कर सकते हैं और उन्हें हल करने की ओर एक कदम अग्रसर भी हो सकते हैं।

देव-दूत गाँधी

ले० एगाथा हरिसन

मुझे केवल दस वर्ष के परिचय का ही सौभाग्य मिला है। किन्तु फिर भी लिखते समय उनके सम्बन्ध अनेक चित्र मेरे मानस पटल पर दौड़ जाते हैं। उदाहरण तया सन् १९३१ दूसरी गोलमेज कानफरेंस के समय—जो समय उन्होंने इंगलैन्ड में विताया था—जब महात्मा गांधी ने किंगसले हाल में ईस्ट एण्ड के निर्धन लोगों में रहने का निश्चय किया था। इस निश्चय से उनके सहयोगियों को बड़ी कठिनाई हुई, और आगे चलकर उन्होंने वेस्ट एण्ड में भेंट करने का स्थान लेना स्वीकार भी कर लिया। पर फिर भी रातको विश्राम के लिये वे बराबर किंगसले हाल ही आते रहे। इन दिनों की स्मृतियों में कुछ विशेष उल्लेखनीय हैं। बड़े सवेरे जब वे नाइट्सब्रिजवाले घर में आते थे, तब मानों घर में एक अभिनव ज्योति दीप्त हो उठती थी। कार से वे सीधे अपने कमरे की ओर जाते और तकली लेकर कातने लगते, और उनके चारों ओर कमरे के कोने-कोने में जुटे हुये सुप्रसिद्ध मूर्तिकार, चित्रकार और फोटोग्राफर इस विचित्र प्राणी की मूर्ति, छवि या फोटो लेने का प्रयत्न किया करते। उनके आसपास महत्वपूर्ण चिट्ठियाँ और

तार और आवश्यक कागज़ात पड़े होते, गोलमेज कानफरेंस के अनेकों सदस्य और संसार के भिन्न-भिन्न देशों के नर-नारियाँ उनसे भेंट करने को उत्सुक बैठे होते। इस बीच कानफरेंस की किसी बैठक का समय हो जाता और महात्माजी उठकर मोटर की ओर दौड़ पड़ते। उनके पीछे-पीछे कोई परिचारक उनका विख्यात चर्खा और जलपान की छोटी सी टोकरी लिये हुये; और सबसे पीछे स्काटलैंड यार्ड द्वारा नियुक्त दो संरक्षक जासूस चलते। ये जासूस जो राजपुरुषों और ऐसी ही हस्तियों के पीछे दौड़ने के आदी थे, इस नये प्रकार के कार्य से प्रसन्न ही हुये, और शीघ्र ही इस छोटे से आदमी से स्नेह करने लग गये। जब महात्माजी भारत लौटे तब उन्होंने इन दोनों जासूसों के पास उपहार-स्वरूप एक-एक घड़ी भिजवाई जिस पर लिखा हुआ था 'मो० क० गांधी की ओर से सप्रेम; ये घड़ियाँ अब भी उन दोनों के विचित्र अनुभव का जीवन की संगिनिया हैं।

'कई मनोरञ्जक घटनायें भी वहाँ होती थीं। जैसे एक दिन मीराबेन ने पाया कि महात्माजी के लिये जो शाक अलग रक्खा गया था, वह छिपाने की जगह से गायब हो गया है, और जहाँ तहाँ उसकी खोज में दौड़ने लगी। जहाँ तक मुझे याद है, मिस्टर एण्ड्रूज ही अपराधी साबित हुये थे।' विचित्र दिन थे वे, काम से और अनुभव से और मिलनेच्छुकों की भीड़ से खचा-खच भरे हुए दिन। मैं सोचती हूँ मैंने उस समय आगन्तुकों की सूची रक्खी होती तो आज पता लग सकता कि उस घर में संसार

के किस-किस कोने से किस-किस मत के अनुयायी कौन-कौन से राजनीतिज्ञ धर्मवेत्ता और अन्य लोग आये ! नित्य प्रार्थना के समय एक अद्भुत दृश्य होता था। कमरे में जितने भी आदमी आ सकते थे आने दिये जाते थे। महात्माजी के लन्दन प्रवास के अन्तिम दिन कमरा खचाखच भरा हुआ था, तिल धरने का भी स्थान नहीं था। जब प्रार्थना हो चुकी तब किसी ने महात्मा जी का प्रिय भजन Lead kindly light आरम्भ किया। उसको सुनते-सुनते न जाने क्यों उस भजन अति व्याप्त अन्धकार—की तीव्र अनुभूति हृदय में जाग उठीं। उसके छः सप्ताह बाद ही महात्माजी बन्दी बना लिये गये थे।

क्या हमारे देशवासियों ने अपने बीच इस व्यक्ति की उपस्थिति का महत्व समझा था ? प्रेस में ये समाचार तो छपे कि वे चार्ली चैवलीन और बर्नार्डशाँ से मिले ; अथवा कि वे केवल अपनी सुप्रसिद्धि लंगोटी लगाये ही सम्राट् से मिलने बकिंघम महल में गये ; किन्तु कानफरेन्स में जो भावी अनिष्ट की सूचनायें उन्होंने दी थी—जिनकी सचाई हम आज जान रहे हैं—उनकी ओर किसी का ध्यान नहीं गया था। मुझे याद है, किसीने उनके सम्बन्ध में बाईबल की यह उक्ति दुहराई थी—"Thou knewest not the time of the visitation" आलोक के आने का समय तूने नहीं जाना—औ मुझे डर है कि हमारे देश के बारे में यह बात बिल्कुल सच सिद्ध हुई।

मैं एक और छोटे घटना का उल्लेख कर रही हूँ। बिहार भूकम्प के बाद ही महात्मा गांधी और राजेन्द्र बाबू के साथ मुझे ध्वस्त प्रदेश का दौरा करने का अवसर मिला था। उनकी मोटर में अपने सुरक्षित आसन पर से सामने दौड़ते हुये दृश्यों को देखकर मैं चकित हो रही थी? उस पखवारे में कुछ एक मील रास्तेको छोड़कर बराबर ही हम लोग मानों लोगों की दीवारें भेदते हुये जाते थे। जब भी हम किसी गाँव के निकट आते तब ये दीवारें इतना विराट आकार ग्रहण कर लेती, जिसकी मैंने कल्पना भी कभी न की थी! इन असंख्य नर-नारियों को महात्माजी के संवाद का सार मुझे अनुवाद में मिलता। कोई भी और व्यक्ति ऐसे मौके का भरपूर लाभ उठाता किन्तु महात्माजी के ध्यान में भी यह बात नहीं आई। "इस दैव दुर्विपाकने तुम्हें क्या सीख दी है" यह समय सरकार और कांग्रेस, हिन्दू और मुसलमान स्पृश्य और अस्पृश्यमें भेद करने का नहीं है। किसी भी सहायक फण्ड से रुपया लो, तो पहले जाँच लो कि तुम उसके योग्य हो कि तुमने उसका प्रतिदान दे दिया है"—यही उनकी सीख का सार था। स्त्रियों को पर्दे में देख कर वे कहते—"यह बेकूफी क्यों? पर्दे का एक ही स्थान है और वह हृदय में है।" और व्यवहारिक बातों को वह कभी नहीं भूलते क्योंकि उस ध्वस्त और निस्साधन प्रदेश में भी चन्दा उगाही वे करते रहे।

हरिजन आन्दोलन के सिलसिले में फिर हमने दक्षिण

उड़ीसा की पैदल की यात्रा भी की। एक सोमवार की बात मुझे अब भी याद है—सोमवार महात्माजी के मौन का दिन है। बड़ी गर्मी थी; हम सब कुछ पेड़ों की छाया में बैठे भिन्न-भिन्न कामों में लगे थे—महात्माजी अपनी चिट्ठियाँ और तार लिये बैठे थे। मैं विलायत से हाल में आये हुये कागज पत्र देख रही थी। पत्रों में झाँकते हुये अचानक एक पत्र १४-३-३४ के क्रिश्चन सेंचुरी'—के सम्पादकीय पर मेरी दृष्टि रुक गई। सम्पादकीय का शीर्षक था 'नोबेल-पुरस्कार के लिये हमारा प्रस्ताव'। इस शीर्ष के नीचे कुछ वाक्य ये थे :—

"नोबेल शान्ति पुरस्कार गांधी को क्यों न दिया जाय! यह कोई व्यक्तिगत आभार नहीं होगा, और वे शायद इसे चाहते भी नहीं। इस सम्मान को वे अधिक महत्त्व नहीं देंगे और इतने धन के लिये सिवाय देडालने के दूसरा उपयोग भी उन्हें नहीं सूझेगा। ये सब इस पुरस्कार की पात्रता के ही प्रमाण हैं······कहा गया है पुरस्कार के प्रवर्तक का उद्देश्य था ऐसे साहसी स्वप्नद्रष्टाओं और भवितव्यदर्शियों को प्रोत्साहित करना, जिनके विचार उनके युग से इतने आगे बढ़े हुये हो कि बिना ऐसी आकस्मिक सहायता के लोगों को आकृष्ट न कर सकें; यह उद्देश्य नहीं था कि मील भर लम्बी सन्धि करानेवाले या शान्ति के संग्राम में मील भर मोर्चा बांधनेवाले व्यवहारिक राजनीतिज्ञ को पुरस्कृत किया जाय। दोनों ढंग के कार्य श्रेयस्कर हैं किन्तु यदि पुरस्कार का कुछ प्रभाव इतिहास की प्रगति पर

पड़ सकता है तो तभी यदि वह सफल व्यावहारिक राजनीतिज्ञों की बजाय रचनात्मक आदर्शवादियों को दिया जाय। यदि गांधी वैसे अत्यन्त अव्यवहारिक अन्ध विश्वासी हों भी जैसा कि उनके कठोरतम आलोचक उन्हें मानते हैं तो भी यह सत्य ही रहेगा कि वे अहिंसा सिद्धान्त में संसार के सर्व प्रथम प्रतिनिधि हैं। यदि इतने पर भी वे नोबेल शान्ति पुरस्कार के सर्वाधिकारी नहीं हैं तब भी उस पुरस्कार के उद्देश्य और प्रभाव के सम्बन्ध में जनता की धारणा बदलने की जरूरत है।"

मैंने आँख उठा कर महात्मा जी की ओर देखा; वे अपने कागजों की बीच प्रशान्त भाव से बैठे थे। मौन का यह एक दिन ही उन्हें इन कागजों को निबटाने का अवकाश देता है। महात्मा जी से कुछ दूर पर गांव के लोगों का एक समूह—जिसमें से कुछ लोग पहली रात से वहाँ खड़े या बैठे थे–चुप चाप उस व्यक्ति की ओर टकटकी लगाये था, जो कि इस निर्दय जगत में उनके सर्वस्व का प्रतीक है। मैं उठकर वह सम्पादकीय लेख उनके पास ले गई—उपर्युक्त वाक्य मैंने चिह्नित कर दिये थे। उन्होंने समूचे लेख को दो बार पढ़ डाला, फिर कागज का एक टुकड़ा उठा कर उस पर लिख दिया—

"ऐसा स्वप्न द्रष्टा कभी हुआ है, जो आकस्मिक सहायता से लोगों को आकृष्ट कर सका हो?"

बस यही, उनकी टिप्पणी थी—सिवाय इसके कि परचा मुझे पकड़ाते समय वे मुस्कुरा दिये थे। —एगाथा हैरिसन

महान आत्मा

वह दुर्बल और क्षीण काय है परन्तु उसकी महान आत्मा ने संसार को कँपा दिया है। विरक्त और तिरस्कृत प्रेम ने अनुरक्त और अपमानित शारीरिक परिश्रम ने इस पुरुष की गर्जना में अत्याचार के विरुद्ध चुनौती की आवाज़ उठाई है। जीवन मंत्र पढ़नेवाला जादूगर जो धरती माता के अत्यन्त निकट है उस मनुष्य से बढ़ कर कौन पुरुष है जिसके हृदय में देश भक्ति की ज्वाला इतने जोर से धधक रही हो? सत की खोज में वह एकचित है। सब सांसारिक सुखों को वह तिलांजलि दे चुका है। इस मनुष्य की आत्मा से बढ़ कर किसकी आत्मा पूर्ण हो सकती है? वह दुःख और कष्ट के अनन्त दुर्गम पथ का पथिक है।

जापानी महाकवि
योन नागूची

गांधी जी

बर्बरता के युग में मनुष्य की भूख ने उसके अन्न पर मर्यादायें नहीं लगायी थीं। वह नरमांस भी खाता था। परन्तु समाज के विकास के साथ अब यह बात नितान्त असम्भव हो गई है। इसी प्रकार हम उस युग का इन्तजार कर रहे हैं, जब कि हिंसा का समर्थन किसी भी कल्पित दलील से नहीं हो सकेगा। चाहे कुछ भी परिणाम क्यों न हो। क्योंकि मानवता की दृष्टि से युद्ध में विजय की भयानक पराजय हो सकती है और भौतिक लाभ की जितनी आध्यात्मिक कीमत हमें चुकानी पड़ती है, उसके लायक वह नहीं होता। असत विजय के लिये अपनी आत्मा की अपेक्षा सब कुछ गंवा देना कहीं बेहतर है।

महात्मा गाँधी ने इस आदर्श को राजनैतिक क्षेत्र में दाखिल किया। इस लिये हम उनकी इज्जत करते हैं। और उनके नेतृत्व में प्रति दिन भारतवर्ष दुनियाँ पर यह प्रकट कर रहा है कि जब मनुष्य स्वभाव अपने जाग्रत ऐश्वर्य के बल पर बिना प्रतिशोध के अपमान और यन्त्रणायें सहन करता है, तब उसके सामने हरएक आक्रमणशील सत्ता की कैसी शोचनीय हार होती है। आज हिन्दुस्तान अपने महान नेता से प्रेरणा पाकर मानवीय इतिहास के उस नये अध्याय का उपक्रम कर रहा है जो अभी शुरू ही हुआ है।

—रवीन्द्र नाथ ठाकुर

नेटाल में गांधी जी और बा

दिसम्बर १६१२ के अन्तिम सप्ताह में जिस दिन मैंने दक्षिण अफ्रीका की संहति में प्रवेश किया था, उसी दिन सबसे पहिले डरबन से १४ मील के फासले पर स्थित फिनिक्स आश्रम देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। इस आश्रम का जीवन बड़ा शान्त, स्वाभाविक और नियमित था। नित्य नैमित्तिक कार्यों और नियमों में राष्ट्रीय संघर्ष के सिवा और कोई व्याघात नहीं पहुँच सकता था। दक्षिण अफ्रिका प्रवासी भारतीयों की हित-रक्षा करने, उनको सुपथ दिखाने और उनकी कष्ट-कथा संसार को सुनाने के लिये आश्रम से 'इन्डियन ओपिनियन' नाम से एक सप्ताहिक अखबार निकलता था। आश्रम-वासी नित्य सवेरे अखबार के प्रेस में काम करते और अपराह्न में किसानों की भाँति खेत गोड़ते, साग-भाजी बोते और भाँति भाँति के फलफूलों के पौधे लगाते। सन्ध्या समय सभी लोग प्रार्थना गृह में एकत्र होते, वहाँ गीता, रामायण, बाइबिल तथा तथा कुरान आदि का पाठ होता। रात्रि को विश्राम और दूसरे दिन वही नित्य की दिनचर्या।

इस आश्रम का संचालक एक अद्वितीय महापुरुष था। वह आश्रमवासियों में सबसे अधिक और कड़ी मेहनत करता था।

जहाँ युवकों का बल भी जवाब दे बैठता, वहाँ वह उनकी सहायता के लिये झट पहुँच जाता और अवलम्ब देकर काम को आगे बढ़ाता था। वह सबसे पहले उठता और सबसे पीछे सोता था। खेत पर वह सबसे पहले पहुँचता, फावड़ा चलाने में सबसे आगे रहता और अपने कठोर परिश्रम से सभी को आश्चर्य में डाल देता। किसी काम से उसे परहेज न था। वह झाड़ू लगाता, बर्तन मांजता, रसोई परोसता, कपड़े फींचता, लकड़ी चीरता और आश्रम का मल-मूत्र तक भी उठाता। काग़ज़ छापने का यन्त्र तेल की मशीन से चलता था। उस मशीन को उसने पेन्शन दे दी और उतने बड़े सिलेण्डर को जिसमें काग़ज़ दोनों तरफ एक साथ ही छपकर निकलते थे, मानवीश्रम पर अवलम्बित कर दिया। वह घड़ी रख.कर एक बार में घण्टा भर उस विशाल सिलेण्डर मशीन को चलाता। इस दरम्यान में उसके साथ मशीन चलानेवाले कई युवक थक कर बैठ जाते थे। जब उसे डरबन जाने की जरूरत पड़ती—और यह अक्सर पड़ती ही रहती थी तो वह पहाड़ों की उतराई-चढ़ाई ऊबड़-खाबड़ राह द्वारा पैदल ही जाता और पैदल ही लौटता। समस्त आश्रम का भार उसी पर था। उसने बैरिस्टर का चोगा उतार फेंका था और पचास हजार रुपये सालाना आमदनी को ठुकरा दिया था। अब वह आस्ट्रेलिया के आटे की बोरियों का सिला हुआ अधबहियां कुरता और घुटने तक का पाजामा पहनता था। उसके पैरों में न जूते होते थे और न सिर पर टोप। वह सब

प्रकार के आमोद-प्रमोद को तिलाँजलि देकर किसान का कठोर जीवन व्यतीत कर रहा था। यह व्यक्ति था हमारा बापू 'गांधी', जो अपनी अर्द्धांगिनी माता कस्तूरबा के साथ घोर तपस्या कर रहा था और उसी में बैठ कर हिन्दुस्तान का नया नक्शा बना रहा था।

फिनिक्स में बापू ने लगभग सौ एकड़ भूमि खरीद ली थी और कुछ चुने हुये भारतीय तथा यूरोपियन जिज्ञासुओं को वहाँ ला बसाया था। इस आश्रम में हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई गोरे-भूरे-काले सभी सम्प्रदायों और वर्णों के लोग भाई-भाई की भाँति रहते थे। सादा जीवन और उच्च विचार आश्रम जीवन का एक मंत्र था। दूसरे शब्दों में फिनिक्स आश्रम को एक प्रयोग शाला कहना अधिक उपयुक्त होगा। जिसमें बा के साथ बापू अपने सत्य का प्रयोग कर रहे थे। प्राकृतिक सुषमा-सम्पन्न होने के कारण नेटाल दक्षिण अफ्रिका की संहति का बगीचा कहलाता है, और नेटाल के इस सुरम्य स्थान में आश्रम बनाकर बापू अपनी जीवन संगिनी बा के साथ-साथ तपोमय जीवन व्यतीत करते थे। इसी आश्रम में सत्याग्रह की सृष्टि हुई थी, जो इस समय भारत को दासत्व से मुक्त कराने में अमोघ अस्त्र सिद्ध हो रहा है।

सन् १९१४ में डरबन के कारागार से मुक्त होने पर मैंने 'इन्डियन ओपिनियन' के हिन्दी सम्पादक की हैसियत से कुछ मास फिनिक्स आश्रम में निवास किया था। उस समय

सम्पादकीय विभाग बापू और पोलक जैसे महाभाग व्यक्ति काम करते थे। सच पूछिये तो वहाँ मुझे सम्पादन-कला की थोड़ी बहुत शिक्षा मिली थी। वैसे तो सन् १६१२ के अन्त में नेटाल की भूमि पर पैर रखते ही मैंने बापू और बा के दर्शन किये थे और उसी समय से मेरे जीवन का नक्शा बदल गया था। पर सन् १६१४ में बा को अत्यन्त निकट से देखने का अवसर मुझे मिला। ज्यों-ज्यों मेरे हृदय में उनके प्रति स्नेह और श्रद्धा के भाव बढ़ते गये। यद्यपि बचपन में विवाह हो जाने के कारण बा को अक्षर बोध के अतिरिक्त पाठशाला की विधिवत् शिक्षा से वंचित रहना पड़ा था। तथापि उनका सहज और व्यावहारिक ज्ञान बड़ा विलक्षण था। वे दक्षिण अफ्रिका की राजनीतिक समस्याओं के रहस्य को समझने और भारतीय विरोधी कानूनों का मुकाबिला करने में किसी भी शिक्षित व्यक्ति से कम नहीं थीं। वे कितनी महान और कैसी प्रतिभाशालिनी देवी थीं। उनका शरीर दुर्बल था; पर उनका हृदय बड़ा बलवान था। उनकी आत्मा अत्यन्त धर्म-भीरु थी; पर वे नितान्त निर्भय थी। सेवा और त्याग की वे सजीव मूर्ति थीं। कितनी भद्र, कितनी निर्भीक, कितनी कोमल, कुकर्मों के प्रति कितनी कठोर, कितनी सरल, कितनी वीर और फिर भी कितनी विनयशील।

मेरी धर्मपत्नी स्वर्गीया जगरानी देवी को पीटरमेरीत्स बर्ग के सेण्ट्रल जेल में बा की सहबन्दिनी होने का सौभाग्य प्राप्त

हुआ था। भारत और प्रवासी भारतियों के इतिहास में यह पहला ही प्रसंग था, जब कि पददलित एवं पीड़ित शर्त्तबन्द भारतीय मजदूरों के जिनको माथ पीछे तीन पौण्ड अर्थात् पैतालिस रुपया वार्षिक कर देना पड़ता था, संकट मोचन के लिये हमारी वीरांगनाओं ने स्वेच्छा पूर्वक जेल की यातनायें स्वीकार की थीं। जेल में इनको हब्शियों की भाँति मकई की लपसी खानी पड़ती और कैदियों के कपड़े फींचने का काम करना पड़ता था। जेल खाने में बा को ऐसा कष्ट भोगना पड़ा कि उनका स्वास्थ्य बिल्कुल चौपट हो गया और करीब-करीब जीने की आशा नहीं थी। रोगियों को जेल खाने से ले जाने के लिये बापूजी स्वयं हाथ से खीचनेवाली ठेलागाड़ी लेकर आये। रोगियों को संभाल कर गाड़ी पर लिटाया और स्वयं बापूजी ने ठेलागाड़ी खीचना शुरू किया। हमलोगों में से कई लोग बापू के हाथ से गाड़ी ले लेने के लिये आगे बढ़े; पर उन्होंने किसी की सहायता स्वीकार नहीं की और अकेले ही लगभग तीन मील की ऊबड़-खाबड़ मंजिल तय की।

मेरी पत्नी का स्वास्थ्य काफी गिरा हुआ था उसकी सेवा का भार बापूजी ने बा को सौंप दिया। उस समय कारावास के कष्ट से बा का भी स्वास्थ्य बहुत ही ज्यादा गिर गया था फिर भी उन्होंने अपने शरीर का ख्याल न करके रोगियों की सेवा करना पसन्द किया। अपनी अथक और स्नेहमयी सेवा के कारण मरीजों को जल्दी आराम पहुँचाने में बा का हिस्सा कम नहीं ? मरीजों को मिट्टी की पुल्टिस बाँधी जाती थी और अखण्ड उप-

वास कराया जाता था। क्षीण काय और अस्वस्थ बा ने मेरी पत्नी की भी सेवा बड़ी लगन और उत्साह से किया। यह उनकी महानता के रूप में एक अमिट छाप छोड़ गयी हैं। बहुमुखी कार्यों में व्यस्त होते हुए भी बापूजी वहाँ मरीजों के डाक्टर थे और स्व० बा नर्स के रूप में प्रसन्नतापूर्वक मरीजों की सेवा करती थीं।

आश्रम की पाकशाला भी बा की ही देख-रेख में चलती थी। वे रसोई के काम में बहुत व्यस्त रहा करती थीं। वहाँ बापू की विधि के अनुसार रोटियाँ बनती थीं, जो ऐसी कड़ी होती थीं कि उनको चबा कर गले के नीचे उतरने योग्य बनाने में दाँत के छक्के छूट जाते थे। आस्ट्रेलिया का मैदा स्वास्थ्य की दृष्टि से लाभदायक नहीं जँचा, इसलिये आश्रम में हाथ से आटा पीसा जाता था। इससे जहाँ स्वास्थ्य का रक्षण होता था वहाँ खर्च भी कम पड़ता था। अन्य प्रकार के व्यञ्जनों को बनाने में भी बा सदैव बापू की पाक विधि का ही उपयोग किया करती थीं। मिर्च, मसाला और घी के तो दर्शन भी दुर्लभ थे, जिनसे भारतीयों की प्रिय कढ़ी, दाल और तरकारी स्वादिष्ट बनती है। वहाँ तो नाना प्रकार की शाक-भाजी एक-साथ ही पानी में उबाली जाती थी।

एक बार आश्रम के कुछ तरुण प्रवासी बा के इस भोजन से ऊब गये था और बापू को खुश रखने के लिये वे दिखावटी साधना करने में किसी से पीछे नहीं थे; पर उनकी चित्तवृत्ति

और रसना एक बारगी बगावत कर उठी। उन्होंने डरबन से स्वादार पूरी कचौरियां मसालेदार तरकारियाँ और मिठाइयाँ गुप्त रूपेण मंगवाई और एकान्त में भोजन किया। यह परस्पर पहिले ही निश्चय हो गया था कि बापू और बा के कानों में इसकी भनक न पड़ने पाये। पर उस गुप्त भोज में शरीक देवदास गांधी अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ न रह सके। उन्होंने बापू के सामने अपना अपराध स्वीकार करते हुए सारा भण्डा फोड़ दिया। शाम को प्रार्थना के समय बापू ने एक-एक से पूछना आरम्भ किया ; पर किसी ने देवदास के कथन का समर्थन नहीं किया। इस पर बापू ने कहा—इसमें तुमलोगों का नहीं, मेरा ही दोष है। मैं अभी सत्य को अपने जीवन में ला नहीं सका, इसी से मेरे सामने सत्य प्रकट करने में तुम्हें हिचकिचाहट होती है। यह कह कर बापू अपने गालों पर तड़ातड़ तमाचे लगाने लगे। यह सभी को भासित हुआ मानो भूकम्प आ गया हो। दोषी-निर्दोषी सभी थर-थर काँप उठे। बापू ने दूसरों को दण्ड देने के बदले अपने ही शरीर को दण्ड दिया—दूसरों के अपराध के लिये स्वयं प्रायश्चित किया। यह उनके लिये बहुत बड़ा दण्ड था। एक-एक करके सबने अपना अपना अपराध अंगीकार किया और ग्लानि भरे हृदय से क्षमा माँगी।

पं० भवानी दयाल संन्यासी

गांधी जी की महत्ता

गांधी जी जिस तरह विलायत से बैरिस्टर बन कर आये उसी तरह बैरिस्टर बने हुये कई लोग आये हैं। उनके पिता दीवान के पद पर थे। वैसे दूसरे कई लोगों के भी रहे होंगे। इनका स्वभाव जैसा सादा और सरल है वैसा दूसरों का भी होगा। इसमें कोई बड़ी बात नहीं। परन्तु शील या चारित्र्य—जिसकी बदौलत इस कर्ममय भूमि में अपने आस-पास की वस्तु स्थिति पर मनुष्य की सत्ता चलती है और जिसकी बदौलत अनेक प्रकार के प्रयत्न सफल होने की संभावना उत्पन्न होती है उस शील या चारित्र्य का—जिनमें प्रत्यक्ष दर्शन होता है ऐसे जीवन चरित्र हमारे यहाँ बहुत कम पाये जाते हैं। गांधी जी की जीवनी की यही विशेषता है। उनके कई सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक या दूसरे मन्तव्य कई लोगों को पसन्द नहीं आयेंगे। विद्वत्ता में उनसे बढ़कर दूसरे अनेक लोग होंगे। लेकिन शील या चारित्र्य की जो महत्ती ऊपर बताई गई है उस दृष्टि से महात्मा गांधी की जीवनी साधारण मनुष्य के लिये आदर्श का काम देगी इसके विषय में हमारी समझ में न कोई मतभेद है और न हो सकता है—

१६-३-१६१८ लोकमान्य तिलक

गांधी जी की वीरवृत्ति

गांधी जी की नीति ने देश को पौरुष हीन कर दिया है। उनकी अहिंसा ने हमारी रही सही वीरता खत्म कर दी है। भारत को एक क्षात्र तेज-युक्त नेता की जरूरत है। गांधी जी में क्षत्रिय का एक भी गुण नहीं। आज कैसा उम्दा मौका आया हुआ है। अंग्रेज यूरोपीय महायुद्ध में उलझे हुए हैं। कोई क्षत्र धर्मीय नेता होता, तो ऐसे मौक़े से ज़रूर लाभ उठाता। कम से कम अपने देश बन्धुओं को हथियार तो दिलवाकर ही रहता। परन्तु गांधी जी वही अपना पुराना रोना रो रहे हैं। वे न तो योद्धा हैं और न राजनीतिज्ञ। निरे बनिया।

गांधी जी की नीति से वेहद चिढ़े हुये एक हथियार परस्त लड़ाई खोर राजनीति-निपुण मित्र बोले।

इन मित्र की आलोचना में असंगति और युक्ति दोष है। एक तरफ तो वे गांधी जी से इसलिये नाराज हैं कि गांधी जी अपने प्रतिपक्षी की मुसीबत से फायदा नहीं उठाते, और दूसरी तरफ वे गांधी जी पर यह इलजाम लगाते हैं कि उनमें क्षत्रिय के कोई गुण नहीं। अपना प्रतिपक्षी जब किसी संकट से ग्रस्त हो उस समय उस पर प्रहार करने की नीति वहादुर क्षत्रियों की युद्ध-मर्यादा के खिलाफ मानी जाती है। वह धर्म,युद्ध नहीं, अधर्म युद्ध कहा जाता है। इसलिये इस अलोचना का असली

असहयोग और अहिंसक प्रतीकार उनका नैमित्तिक धर्म है। अन्याय का विरोध करने के लिये खास अवस्थाओं में वे उसे अपना परिस्थिति प्राप्त कर्त्तव्य मानते हैं, लेकिन उनका नित्य धर्म और शाश्वत नीति तो सहयोग और सहयोग ही है। इसलिये लड़ाई के बीच में भी वे कह देते हैं कि मैं तो सहयोग के लिये तड़प रहा हूँ। I'am dying for co-operation.

जिन लोगों को यह भ्रम हो गया है कि जहाँ संघर्ष हो, वही वीरता हो सकती है; जो लोग शस्त्रधारी योद्धा को ही वीर समझते हैं, निर्दयता को ही दिलेरी समझते हैं वे गांधी जी की वीरता को समझ नहीं पाते। इसलिये जब गांधीजी लड़ाई छेड़ने से पहले अपने प्रति पक्षी को ललकारने के बदले सिर झुकाकर और घुटने टेककर उसे युद्ध टालने की दरख्वास्त करते हैं, तो हमारे देश के कुछ गर्म तबियत वाले युद्धवादी हक्के बक्के रह जाते हैं। वे कहते हैं कि यह बनिया क्या जाने, युद्ध किस चिड़िया का नाम है?

असल बात यह है कि वीरवृत्ति और वैरवृत्ति— ये दोनों एक ही चीज नहीं हैं। बल्कि यह कहना चाहिये कि ये परस्पर विरोधी भावनायें हैं। वैर या दुश्मनी की भावना कमजोर दिल में पैदा होती है। युद्ध या संघर्ष का भावी लड़ाई-झगड़े का सम्बन्ध द्वेष और दुश्मनी में भले ही हो, किन्तु प्रतीकार—क्या सशस्त्र प्रतीकार और क्या निशस्त्र प्रतीकार—वैर या दुश्मनी की भावना से कोई रिश्ता नहीं है।

जिस युद्ध में वैर या दुश्मनी की भावना बिलकुल नहीं होती वह धर्म युद्ध धर्म युद्ध कहलाता है। युद्ध में जिस परिमाण में वैर या द्वेष की भावना हो, उसी परिमाण में वह अधर्म-युद्ध हो जाता है। मार पीट और युद्ध में यही तो अन्तर है। मार पीट केवल गुस्से के कारण हो जाती है। उसकी जड़ में कोई स्वार्थ या कोई मनोविकार होता है। लेकिन युद्ध तो एक ख़ास उद्देश्य से होता है। वहाँ अपने पराये का कोई भेद नहीं होता। अधर्म और अन्याय का प्रतिकार ही एक मात्र उद्देश्य होता है। इसलिये युद्ध की कुछ मर्यादायें होती हैं, कुछ नियम होते हैं और कुछ निर्बन्ध भी होते हैं।

एक छोटा सा उदाहरण लीजिये। "मैदान में कुछ लड़के गुल्ली-दण्डा खेल रहे हैं। खेल के कुछ नियम हैं। उनमें से जिस पक्ष के लड़के कमजोर हैं वे उन नियमों को ठीक ठीक पाबन्दी नहीं करते। दूसरा पक्ष कहता है कि तुम 'फ़ाल' करते हो। इमानदारी से नहीं खेलते. इस तरह खेलने से क्या फायदा? इसमें तो कोई अपनी करामात नहीं दिखा सकता। हमें ऐसे खेल में मजा नहीं आता।"

इस उदाहरण में एक बड़ा भारी सिद्धान्त भरा हुआ है। जो कमजोर दल है, वह सिर्फ़ जीत का कायल है, उसे खेलने में मजा नहीं आता। न तो उस में खिलाड़ी की तबियत है और न करामात। दूसरा पक्ष दर असल खिलाड़ियों का पक्ष है। उसे विजय की इतनी परवाह नहीं, जितनी कि खेलने की

है। खेल के नियमों का पालन करना वह अपना धर्म सम-
झता है।

सच्चे वीर पुरुषों में और केवल विजय की इच्छा से लड़ने
वालों में यही अन्तर होता है। वीर पुरुप को तब तक लड़ने में
मजा नहीं आता, जब तक कि सामने वाला उसकी बराबरी का
न हो, और उसी तरह हथियार बन्द भी न हो। इसलिये अगर
प्रतिपक्षी की तलवार टूट जाय, तो वह उसे दूसरी तलवार
भेंट करता है या तो वह उसे फेंक देता है। प्रतिपक्षी पर दूसरा
कोई हमला करे, तो उस हमले से उसे बचाता है और फिर
लड़ाई शुरू कर देता है। ये क्षात्र धर्म की मर्यादा है।

इसका एक अनूठा उदाहरण महाभारत में पाया जाता है।
वह है पितामह भीष्म का। पितामह भीष्म एक सच्चे योद्धा
थे। जब दोनों सेनायें बिल्कुल तैयार खड़ी हो गईं और अब
हथियार चलने की ही देर थी, तो युधिष्ठिर भीष्माचार्य के पास
गया और उसने उनके चरण छुये। लोगों ने समझा, यह
युद्धिष्ठिर लड़ाई से घबड़ा कर आत्म समर्पण करने जा रहा है,
क्योंकि वे वीरवृत्ति और वैरवृत्ति का भेद नहीं मानते थे।

भीष्माचार्य ने पूछा—"क्यों युद्धिष्ठिर, कौरवों की इस
विशाल सेना को देख कर क्या तू कातर हो गया। क्या तुझे
युद्ध कला की जो शिक्षा दी गई थी, वह अकारथ गई।"

युधिष्ठिर बोला—पितामह, मैं आत्म समर्पण करने नहीं
आया। आपने मेरी परवरिश की। हम लोगों को युद्ध कला

की बढ़ियाँ से बढ़ियाँ तालिम दी। आपने और हमारे आचार्य ने हमें यही सिखाया कि स्वार्थ के लिये नहीं बल्कि धर्म के लिये लड़ो। और उसमें अपने प्राण और अपने सर्वस्व का बलिदान करने के लिये नित्य तत्पर रहो। महाराज ! आज वह सुअवसर प्राप्त हुआ है। विपक्षियों के आप ही सेना नायक हैं। आज आप ही से लोहा लेना है। इस लिये आपकी इजाजत लेने आया हूँ कि आपसे लड़ूं। और यह आशीष मांगने आया हूँ कि इस पुण्य कार्य में मुझे सफलता मिले।

भीष्माचार्य गद् गद् होकर बोले—युधिष्ठिर तू धन्य है ! तू दर असल धर्मराज भी है और युधिष्टिर भी। मैं विपक्ष का सेनानायक हूँ और अपने पक्ष के लिये मैं अपने प्राणों की बाजी लगा दूंगा। लेकिन तुम्हें आशीष देता हूँ कि तुम पांडव विजयी और चिरायु होओ।

अपने विपक्षी की कल्याण—कामना करने वाले संसार के भीष्माचार्य अद्वितीय योद्धा हैं। यहाँ क्षात्र वृत्ति का परम विकास है। जब उनसे पूछा गया कि "पितामह आपने हमें विजयी की आशीष दी है, लेकिन जब तक आप जीवित हैं, हम जीत नहीं सकते। तब यह बताइये कि आपकी मृत्यु किस चीज में है ?"

भीष्म ने कहा—बेटा मैं विजय का कायल नहीं हूँ। क्षात्र धर्म की मर्यादा का मूल्य मैं अपने प्राणों से भी अधिक समझता हूँ। अगर तुम किसी नपुंसक को मेरे सामने खड़ा कर दो, तो

वह मजे में मेरी गर्दन उतार ले। मैं हाथ नहीं उठाऊँगा। वीरों की हत्या का यह सबसे सहज तरीका है।

उसी महाभारत में दूसरा उदाहरण विजयकांक्षी वृत्ति का भी है; जहाँ वीरवृत्ति ताक पर रख दी गई थी। कर्ण के रथ का पहिया जमीन में धँस गया था। वह उसे निकालने में व्यस्त था इधर अर्जुन उस पर बाणों की बौछार कर रहा था।

भीष्म का उदाहरण वीरोचित उदारता का और बहादुरी का है। अर्जुन का उदाहरण विजय-लोलुप कृपणता का है। भीष्म का उदाहरण क्षात्र-धर्मा योद्धा का है। अर्जुन का उदाहरण नफा नुकसान को ही सर्वस्व समझने वाले बनिया का है। केवल हथियार बन्द होने से ही कोई वीर नहीं हो जाता। अपने तल पर और अपने क्षेत्र में गांधी की वीरता भीष्माचार्य की टक्कर की है।

अब रही शास्त्रों की बात। हम अक्सर दुनिया में दो प्रकार की ताकतें पाते हैं। एक है शरीर बल और दूसरा युक्ति बल। शरीर-बल की कमी को पूरा करने के लिये युक्ति बल प्रयुक्त होता है। शरीर बल जहाँ खतम होता है, वहाँ से युक्ति बल का आरम्भ होता है। शरीर-बल का अभाव युक्ति बल का जनक है। दो पहलवान जब कुश्ती लड़ते हैं तो वे अपनी शारीरिक ताकत का ही भरोसा नहीं करते। वे दाँव पेंच भी लड़ाते हैं। जो दाँव पेंच में निपुण हो वह मल्ल विद्या विशारद माना जाता है। लेकिन अक्सर उसमें ताकत कम होती है। इसी युक्ति बल

में से हथियारों का अविष्कार हुआ है। मनुष्य ने जब यह देखा कि वह जानवरों के सामने केवल अपने शरीर-बल से नहीं टिक सकता तो उसने हिकमतें लड़ाना शुरू किया। इन हिकमतों में से प्राथमिक शस्त्रों का अविष्कार हुआ। और अब तो शस्त्र विद्या एक नर संहारकारी राक्षसी क्रिया ही बन गयी है।

थोड़ा गहराई से विचार करने पर विदित होगा कि युक्ति बल का आधार बुद्धि-बल है। दूसरे जानवरों की अपेक्षा मनुष्य की बुद्धि अधिक विकसित है। यानी वह अधिक होशियार है। इसलिये वह अपनी युक्तियों और हिकमतों से दूसरे प्राणियों पर अपना अधिकार जमाता है। जरा और गहराई से सोचने पर मालूम होगा कि बुद्धि-बल का अधिष्ठान आत्मबल है। यही सर्वश्रेष्ठ बल है। इसलिये गांधी जी एक ऐसी प्रतिकार-विधि की खोज और विकास में व्यस्त हैं जो आत्म बल पर स्थिर हो। उनकी वीर वृत्ति शस्त्रों की शरण लेने में अपनी मान-हानि समझती है।

यहाँ आँगन में दो बालकों की लड़ाई हो गई। एक कुछ कमजोर था; हाथापाई में टिक नहीं सका। इसलिये उसने दूसरे बालक को काट खाया। लेकिन इतने से काम नहीं चला, उसने पास ही पड़ा हुआ डण्टा उठा लिया। वह भी छीन लिया गया। तब वह भाग खड़ा हुआ और दूर से पत्थर बरसाने लगा अर्थात् जब शक्ति न रही, तो उसने युक्ति से काम लिया। एक हद तक युक्ति का अवलम्बन बुद्धिमत्ता का द्योतक है, लेकिन

युक्ति बल की अधिकता वीरता की कमी का लक्षण है। आधुनिक बनियाई युद्ध में, जिन्हें हम नाहक वैज्ञानिक या रासायनिक युद्ध कहते हैं और प्राचीन धर्म युद्ध में यही मूलभूत भेद है। इसलिये यह कहना कि-जिसे हथियारों की पर्वाह नहीं है वह बहादुर नहीं हो सकता, भ्रमपूर्ण और भ्रमोत्पादक है।

मतलब यह है कि जिसे वीरता कहते हैं, वह गांधी जी की युद्ध नीति में पर्याप्त मात्रा में ही नहीं बल्कि चरम मात्रा में है। युक्तिबल का आधार भूत बुद्धि बल भी अपनी चरम सीमा को पहुँच कर आत्मबल में परिणत हो जाता है। जो यह कहते हैं कि उनकी नीति की बदौलत देश में कायरता और कापुरुषता बढ़ी है, वे तो अपनी आँखे मूँद कर दिन-दहाड़े अँधेरा देखते हैं। कौन नहीं जानता है कि कांग्रेस की आज की शक्ति, प्रभाव और प्रतिष्ठा गांधी जी की ही देन है? जब वे शत्रु से लेन देन, विनिमय या सौदे की बात ही नहीं करते, तो यह कहना कहाँ तक युक्ति संगत है कि मजह बनिया हैं। गांधी जी की नीति और रुख की मूल स्रोत गहरा और अखण्ड है। अगर हमें वह कुछ अटपटा का मत जान पड़ता है तो हमारी समझ में फर्क है।

आचार्य दादा धर्माधिकारी

आधुनिक भारत को गांधीजी की देन

सुधार वादी आन्दोलन

"आधुनिक भारत आधुनिक योरप होगा, फिर से प्राचीन या मध्य युगीन ही बना रहेगा ?" यह सवाल अगर आज से पचास साल पहले पूछा जाता तो इसका निश्चित जवाब कोई दे सकता था या नहीं इसमें शक है। अंग्रेजी पढ़े लिखे मुट्ठीभर भारतीय आधुनिक भारत को आधुनिक योरप की दीक्षा देने की कोशिश कर रहे थे, दूसरे कुछ शिक्षित लोग उसे प्राचीन भारत का वेद-कालीन भेष पहनाना चाहते थे, और कुछ ऐसे भी शिक्षित लोग थे जो उसका मध्य युगीन रूप कायम रखना चाहते थे। सर्व साधारण जनता जान बूझकर किसी के भी पीछे जाने को तैयार नहीं थी। वह जनता तमोगुण के अन्धेरे में रास्ता टटोलने की कोशिश कर रही थी। "अपने अन्दर कोई कर्त्तव्य-शक्ति है; हम भी राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं, हमारा भविष्य हमारी ही सामर्थ्य पर निर्भर है" इसका उसे कोई ख्याल नहीं था। अंग्रेजी पढ़े लिखे कुछ लोगों ने योरप का इतिहास पढ़ा था। व्यक्तिवाद, लोकसत्ता, राष्ट्रवाद आदि कल्पनायें वे अंग्रेजी साहित्य से सीखे थे और उन अंगरेजी कल्पनाओं को मातृ भाषा में व्यक्त करना सीख रहे थे। इन्ही कल्पनाओं के

आधार पर पचास वर्ष पहले कांग्रेस ने आधुनिक राष्ट्रनिर्माण का पहला प्रयत्न शुरू किया। उन्हें थोड़ा थोड़ा विश्वास होने लगा था कि हम अनेक प्रान्त, अनेक भाषा, अनेक धर्म और और अनेक जातियों से युक्त इस महाद्वीप तुल्य राष्ट्र को इंगलैंड, अमेरिका, फ्रांस या जर्मनी के समान एक संगठित, संपन्न और सुसंस्कृत राष्ट्र बना सकेंगे। परन्तु उनका यह आत्म-प्रत्यय बहुत ही मंद और अस्फुट था। उनका यह भी विश्वास था कि इस महान कार्य में हमें ईश्वर की सहायता की आवश्यकता है। और वह ईश्वर सहायता अंगरेज सहायकों के द्वारा ही मिल रही है। उन्हें अपने अन्दर बसनेवाले परमात्मा का ज्ञान नहीं था। उन्हें तो ईश्वर अंग्रेजों के रूप में प्रतीत होता था। फलतः उनका सारा भरोसा आत्म प्रत्यय के बदले पर प्रत्यय पर हा था। आधुनिक काल का भारत प्राचीन या मध्य युगीन भारत न होकर आधुनिक ही होगा। ऐसी तो उनकी दृढ़ धारणा थी। लेकिन उनका यह ख्याल था कि उसे आधुनिकता की दीक्षा देने के महत् कार्य का बहुत बड़ा हिस्सा अंगरेजों की सहायता के बिना नहीं हो सकता। आधुनिक भारत आधुनिक यूरोप बने यह उनकी महत्वाकांक्षा थी। परन्तु इस महत्वाकांक्षा की सफलता के लिये अंगरेजों की सहायता आवश्यक है, यह उनका मूल भूत सहित सिद्धान्त था।

व्यक्ति स्वातंत्र्य और लोकसत्ता की कल्पनाओं के आधार

पर उन्होंने धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक सुधारों का कार्य क्रम बनाया और भारत को आधुनिक राष्ट्र बनाने के लिये कार्य का आरंभ किया।

राष्ट्र वाद की प्रधानता

इसके थोड़े दिन बाद आधुनिक भारत में राष्ट्र वाद को प्रथम स्थान मिला। "फिलहाल हमें व्यक्ति स्वातंत्र्य के सर्वांगीण सुधार की जरूरत नहीं, सबसे पहले हमें स्वतंत्र होना है और अंगरेजों की हुकूमत यहाँ से नष्ट करनी है", यह विचार जोर पकड़ने लगा। "लेकिन हम स्वतंत्र कैसे हों! ब्रिटिश सत्ता नष्ट कैसे करें?" यही विचार सारे सुविज्ञ लोगों को बेचैन करने लगा। लोकमान्य ने गणपति (गणेश उत्सव) उत्सव और शिवाजी उत्सव शुरू करके आधुनिक भारत की राष्ट्रीयता को इतिहास का तथा धर्म का आधार दिखला दिया। राष्ट्रीयता ही आज हमारा धर्म है, भारत माता की उपासना ही हमारा सर्वश्रेष्ट धर्म संप्रदाय है ऐसी दृढ़ श्रद्धा उन्होंने युवकों में पैदा की। इस भारत माता की मुक्ति के लिये चाहे जो त्याग करने में ही मोक्ष है, यह श्रद्धा उन्होंने अब 'स्वराज्य' ही नव युवकों का एक मात्र धर्म हो गया। लेकिन "इस धर्म का अधिष्टान कांग्रेस ही है और कांग्रेस में जनता का समावेश होगा तथा उसीके प्रयत्नों से आधुनिक भारत का जन्म हो सकेगा", लोकमान्य की इस नीतिपर उस जमाने के युवकों का विश्वास नहीं था। लोकमान्य का

विधान वादी राजनैतिक आन्दोलन चाहे कितना ही उग्र क्यों न रहा हो, इन नव युवकों की राय में नरम ही था। लोकमान्य के स्वदेशी और वहिष्कार के आन्दोलन में उन्हें कोई बहादुरी नहीं दिखती थी। छत्रपति शिवाजी का आदर्श सम्मुख रख कर विदेशी वस्त्रों की होलियां जलाने में उन्हें कोई वड़ी मर्दानगी नजर नहीं आती थी। ऐसे युवकों ने शिवाजी का वेतरतीब लड़ाई का (गोरिल्ला वार फेयर) तरीका और मेजिनी का षड़यन्त्रों का तरीका इन दोनों को उलट पलट कर उनकी खिचड़ी से एक सशस्त्र क्रान्ति कारी पत्र वनाया। वंगाल में इस क्रान्तिकारी दल ने काली माता की उपासना के सम्प्रदाय का रूप लिया और महाराष्ट्र में शिवाजी-रामदास की भवानी माता के उत्सव का रूप लिया।

जनता का रूख

सशस्त्र क्रान्तिकारी भी अपने आपको आधुनिक राष्ट्र निर्माता कहलाते और मानते थे। लेकिन उनके आन्दोलन का रूप ही ऐसा था कि उसके आम जनता खुल्लम खुल्ला भाग नहीं ले सकती थी। आम जनता वहुत हुआ तो उनके किसी साहसपूर्ण कृत्य की तारीफ करती थी, अथवा गुप्त रूप से उनकी प्रशंसा कर उनकी देश भक्ति के लिये वधाइयाँ देती थी, लेकिन उसे यह आशा कभी नहीं थी कि इन प्रयत्नों के गर्भ से आधुनिक भारत का जन्म होगा। वह तो यही मानती थी कि राष्ट्रनिर्माण तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता का सही रास्ता यह नहीं है।

उसे पुराना इतिहास मुखाग्र नहीं था, शिवाजी महाराज ने जो कुछ किया उसकी तफसील वह नहीं जानती थी ; योरप या रूस के क्रान्तिकारियों के आन्दोलन से भी वह वाकिफ नहीं थी, लेकिन उसे इतना विश्वास था कि इन सशस्त्र क्रान्तिकारी तरुणों की कहीं न कहीं गलती जरूर है और इनके पीछे जाने से हमारा उद्धार नहीं हो सकता।

लोकमान्य की सिखावन

लोकमान्य का राष्ट्रवाद ही ठीक है और इन तरुणों का क्रान्तिवाद हमें मुक्त नहीं कर सकता यह बात लोकमान्य के अविरत प्रयत्न से आम जनता के ध्यान में आ गई। मंडाले लौटने पर लोकमान्य ने कांग्रेस अपने हाथ में ली, उसे आन्दो- करनेवाली जनता की प्रतिनिधिक संस्था का रूप दिया और भारतवासियों में यह दृढ़ भावना पैदा कर दी कि हिन्द की राष्ट्रीयता लोकसत्तात्मक ही होनी चाहिये। भारतीय राष्ट्रवाद और लोकशाही का अटूट गठबन्धन करने के लिये उन्होंने अपने 'कांग्रेस लोकशाही दल' की स्थापना की। हिन्दुस्तान की आम जनता का उद्धार लोकशाही के द्वारा ही होगा, और लोकशाही कांग्रेस में अडिग श्रद्धा से ही प्राप्त होगी यह लोकमान्य की सारी सिखावन का सार है। आम जनता की संगठनों के लिये उन्होंने स्वदेशी, बहिष्कार तथा निःशस्त्र प्रतिकार का रास्ता दिखा दिया था। लेकिन यह रास्ता प्रत्यक्ष प्रतिकार का रास्ता है और इसके लिये जनता को अहिंसा धर्म की दीक्षा लेनी जरूरी

है। इस सिद्धान्त का महत्त्व भारतीय जनता पर गांधीजी ने प्रकट किया।

अहिंसात्मक व्यक्तिवाद और बुद्धि स्वातन्त्र्य

भारतीय जनता पर अहिंसा का महत्त्व प्रकट कर गांधीजी ने यह विश्वास पैदा कर दिया है कि आधुनिक भारत आधुनिक योरप नहीं बनेगा। योरप ने आधुनिक काल में अनेक सामाजिक आदर्शों का आविष्कार किया। व्यक्तिवाद, लोकसत्ता, राष्ट्रवाद और इधर कुछ ही दिनों के पहले समाजवाद ऐसे चार मुख्य सामाजिक आदर्श योरप के उत्पन्न हुये हैं। लेकिन इनमें से हर एक आदर्श का स्वरूप आज कुछ विगड़ा हुआ नजर आता है। पहिले पहल व्यक्तिवाद के आदर्श में खरावी पैदा हुई और व्यक्ति स्वातंत्र्य का अर्थ— अमर्याद स्वार्थ, अवियंत्रित स्पर्धा अथवा असूया और अनिर्बन्ध लोभ किया जाने लगा। व्यक्ति स्वातंत्र्य की वास्तविक महत्ता संयम के बिना व्यक्त ही नहीं हो सकती। व्यक्ति स्वातंत्र का अर्थ स्वैर वासनाओं का अनियंत्रित साम्राज्य नहीं है। जो व्यक्ति स्वैर वासनाओं के दास है वे या उनकी वुद्धि स्वातंत्र हों ही नहीं सकती। यह तत्त्व भारत को समझाने का श्रेय गांधी जी को है। गांधीजी व्यक्ति स्वातंत्र्यवादी हैं। वे वुद्धिस्वातंत्र्य के तत्त्व को भी मानते हैं। अपनी सद्सदविवेक बुद्धि की अपेक्षा दूसरे किसी की भी आज्ञा श्रेष्ठ नहीं मानना चाहिये, यह तत्व भी उन्हें मंजूर है। परन्तु उनका व्यक्ति स्वातंत्र्य स्वार्थ के लिये

मृत्यु बनाम हिंसा

संपूर्ण सत्य का ज्ञान पहिले भी कभी किसी को नहीं हुआ और न आज हो सकता है। हरेक व्यक्ति सत्य का जिज्ञासु है। उसे जो सत्य प्रतीत होता है, उसी को पूर्ण सत्य मानकर उसे उन्मत्त नहीं होना चाहिये। और उन्मादवश अत्याचार से जो धुआँ पैदा होता है उससे अन्त में सत्य की ज्योति बुझ जाती है। यह समझ कर कि उन्हें नये सत्य का दर्शन हुआ है जिन्होंने उसकी प्रस्थापना के लिये अत्याचार या हिंसा का आश्रय लिया उनके उस प्रयास की बदौलत आखिर सत्य का दीप बुझ ही गया। जो सत्य की अग्नि प्रज्वलित करना चाहते हैं उनका उद्देश्य तमोगुण, अज्ञान और अंधेरे को मिटाना होना चाहिये। जहाँ धुआँ हो वहाँ अग्नि होती है, यह मानते हुये भी यह नहीं भूलना चाहिये कि धुआँ ही अग्नि नहीं है। सत्याग्रही व्यक्ति सत्य की प्रस्थापना के लिये असत्य या हिंसा का अवलम्बन नहीं करता, क्योंकि वह जानता है कि उस रास्ते जाने से सत्य और भी दूर हो जाता है। गांधी जी ने इस प्रकार पश्चिम के व्यक्तिवाद और बुद्धिवाद को सत्याग्रह का आध्यात्मिक अथवा अहिंसामय रूप दिया है। इसलिये हम उन्हें एक सर्वांगीण सुधारक कह सकते हैं। लेकिन पुराने समाज सुधारकों की अपेक्षा उनकी वृत्ति हमारी प्राचीन संस्कृति के अधिक अनरूप है और सुधार का कार्य भी उनके द्वारा बहुत बड़े पैमाने पर हो रहा है।

अहिंसात्मक राष्ट्रवाद

लेकिन गांधी जी ने हमारे राष्ट्रवाद को जो नया रूप दिया है वह इससे भी महत्त्व की चीज है। उनके पूर्व जो राष्ट्रवाद इस देश में था, वह यद्यपि खुल्लम खुल्ला योरप का अनुकरण नहीं करता था, बल्कि योरपीय संस्कृति का द्वेष करने का भी दम भरता था, तथापि उसकी राजनीति बहुत बहुत बड़े अंश में किसी न किसी यूरोपीय राष्ट्रवाद का प्रच्छन्न अनुकरण ही थी। कभी कभी तो यूरोपीय संस्कृति से सख्त नफरत करनेवाला राष्ट्रवादी उस संस्कृति की विरोधी भक्ति के कारण, उसका खुल्लम-खुल्ला अनुकरण करनेवाले सुधारकों से भी अधिक तद्रूप होता हुआ दिखाई देता था। इसका कारण यह था कि यद्यपि हमारा राष्ट्रवाद यूरोपीय आक्रमण के प्रतिकार के लिये पैदा हुआ था, तो भी "जैसे से तैसा" बने बिना प्रतिकार असंभव है इस भावना की बदौलत वह तदाकार और तद्रूप बनने लगा था। उसे अनुकूल परिस्थिति प्राप्त हुई होती तो वह तदाकार और तद्रूप भी बन जाता। जो लोग यह कहते हैं कि लोकमान्यतिलक ने राष्ट्रवाद से फैसिज़्म पैदा होता उनके कथन में अगर कुछ सचाई हो तो इतनी ही हो सकती है। "लेकिन भारत की परिस्थिति ऐसे राष्ट्रवाद के विकास के लिये अनुकूल नहीं है, यहां की जनता चाहे भी तो भी वह ब्रिटिशों के जैसी बन कर उनको हरा नहीं सकती। भारतीय जनता का उद्धार निःशस्त्र क्रांति के स्वावलम्बी मार्ग से ही होगा। इस

वर्गों द्वारा नहीं हो सकता।" यह लोकमान्य जानते थे। इसलिए हम कह सकते हैं कि उनके राष्ट्रवाद की परिणति फैसिजम में नहीं होती। परन्तु भारतीय राष्ट्रवाद को लोकशाही पर अधिष्ठित कर स्वावलम्बी निःशस्त्र क्रान्ति का तंत्र परिणत करने का सारा श्रेय गांधी जी को ही देना होगा। करीब बीस साल से गांधी जी ने यह कार्य बड़ी सफलता से किया है। उन्हीं के नेतृत्व में कांग्रेस को भारतीय जनता की एकमेव प्रतिनिधि संस्था का रूप प्राप्त हुआ है।

भारतीय राष्ट्रीयता और भारतीय लोक शाही

हमारी राष्ट्रीयता का आधार लोकशाही ही हो सकती है, यह पाठ भारतवर्ष को लोकमान्य ने पढ़ाया, और इस लोकशाही का आधार अहिंसा ही हो सकती है। यह सब आज उसे गांधी जी सिखा रहे हैं। इस प्रकार राष्ट्रीयता और लोकशाही को गांधी जी अहिंसा की दीक्षा दे रहे हैं। इसलिये हमारी राष्ट्रीयता यूरोपीय राष्ट्रीयता से भिन्न प्रकार का रूप ले रही है और हमारी लोकशाही भी योरपीय लोकशाही की अपेक्षा अधिक तत्व शुद्ध और सुस्थिर होती जा रही है। लोकशाही की राजनीति अहिंसात्मक ही होनी चाहिये, हिंसक वायु मंडल में लोकशाही टिक ही नहीं सकती। वह शिक्षा आज का यूरोप सारे संसार को ऊँचे स्वर से चिल्ला चिल्ला कर दे रहा है। अगर आधुनिक भारत की राजनैतिक बागडोर गांधी जी अपने हाथों में न लेते और यदि भारत उनके सत्याग्रह की दीक्षा न लेता, तो आज

उसकी जो प्रगति हुई है वह हुई होती ऐसा कोई नहीं कह सकता। यूरोप में हिटलर मुसोलनी के उदय के कुछ ही साल पहले भारत की राजनीति के सूत्र गांधी जी के हाथ में आये। आज यहाँ राष्ट्रीयता और लोकशाही का जो विकास दिखलाई दे रहा है उसका श्रेय अंग्रेजों की देन को नहीं है बल्कि अंग्रेजों की सत्ता के प्रतिकार के लिये उत्पन्न सत्याग्रह शक्ति में उस विकास के बीज हैं, यह बात अब किसी को समझाने की जरूरत नहीं।

यूरोप की हालत

गत महा समर के बाद कुछ समय के लिये राष्ट्रीय स्वयं निर्णय और लोकशाही के युग के प्रारम्भ का दृश्य दिखाई दिया। परन्तु आज हम वहाँ क्या देख रहे हैं ? जर्मन साम्राज्य, आस्ट्रेलियन साम्राज्य, और तुर्की साम्राज्य के मिटने पर यूरोप में जो छोटे-छोटे लोकशाही राष्ट्र बने क्या वे सब आज सुरक्षित हैं ? यूरोपीय राष्ट्रीय राज्य और लोकशाहियां आज एक के बाद एक गायब हो गयीं। और उन देशों की जनता असहाय बनकर यह विनाश देख रही है।

भारतीय जनता आज ऐसी हताश नहीं हुई है। इस देश में लोकशाही की स्थापना करने की ताकत उसके अन्दर बढ़ रही है, यह अनुभव उसे हो रहा है। भारतीय जनता का यह आशावाद उसका यह आत्म प्रत्यय, उसके अन्दर पैठे हुये सत्याग्रही तत्व ज्ञान में से पैदा हुआ है।

सत्याग्रही तत्वज्ञान की श्रेष्ठता

लेकिन कोई इससे यह मतलब नहीं निकाले कि भारत की जनता आज स्वाधीन लोकशाही राज्य का उपभोग कर रही है। हिन्दुस्तान में अभी लोकशाही स्वराज्य की स्थापना होनी बाकी है और इस स्वतंत्र लोकशाही स्वराज्य की स्थापना के अनन्तर उसके सामाजिक तथा आर्थिक जीवन का पुनः संगठन भी होना है। यह सामाजिक और आर्थिक पुनः संगठन किस सिद्धान्त की नींव पर हो इस विषय में आज कांग्रेस में सत्याग्रही और समाजवादी ऐसी दो भिन्न-विचार परंपरायें हैं। वस्तुतः इन दो विचार परंपराओं में मूलतः भेद नहीं है। परन्तु जो लोग यूरोपीय इतिहास के ऐनक से ही भारतीय इतिहास की तरफ देखते हैं उन्हें सत्याग्रही तत्वज्ञान राष्ट्रवादी प्रतीत होता है। और यूरोपीय राष्ट्रवाद की तरह इसमें से भी धनिकशाही पैदा होगी ऐसी उन्हें आशंका या आशा है। परन्तु सत्याग्रही तत्वज्ञान यूरोप के अर्थ में राष्ट्रवादी नहीं है, और न समाज-वादी ही है। हिन्दुस्थान परतंत्रता के कारण गत बीस वर्षों में सत्याग्रही तत्वज्ञान को राष्ट्रवादी स्वरूप प्राप्त हुआ और वही अब तक कायम है। हिन्दुस्तान जब तक परतंत्र है तब तक यह राष्ट्रवादी स्वरूप कायम रहेगा। लेकिन तो भी सत्याग्रही तत्व-ज्ञान राष्ट्रवादी तत्वज्ञान से भिन्न है। राष्ट्र सत्याग्रहियों का अन्तिम दैवत नहीं है। दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण कर अपने राष्ट्र का स्वार्थ सिद्ध करनेवाला राष्ट्रधर्म सत्याग्रह में अन्तरभूत

नहीं हो सकता। सत्याग्रही राष्ट्र का आक्रमणशील बनना असम्भव है। सत्याग्रह स्वत्व और सत्य की रक्षा का अस्त्र है। दूसरे के स्वत्व का अपहरण करने में वह सब तरह से असमर्थ है। यह उसका दोष नहीं बल्कि यही उसकी श्रेष्ठता है। राष्ट्र की फौजी ताकत और दंड शक्ति को संगठित करके उसके आर्थिक पुनः संगठन की समस्या हल करने का सिद्धान्त भी सत्याग्रह को मंजूर नहीं है। राष्ट्रीय जीवन का पुनः संगठन न्याय और समता की नींव पर करना हो तो वह शान्तमय साधनों द्वारा ही हो सकेगा ऐसी उसकी श्रद्धा है। यूरोपीय राष्ट्रवाद एक आक्रमणशील फौजी ताकत है। इस फौजी ताकत के जोर पर अन्तर्गत समता तथा न्याय के आन्दोलन कुचलने में भी यूरोपियन राष्ट्रवाद नहीं हिचकता। फौजी ताकत से समता और न्याय की स्थापना नहीं हो सकती, और प्रस्थापित राज्यसत्ता की लश्करशाही नष्ट करने के लिये लोकशाही राज्य तंत्र भी उपयोगी नहीं होता, यह अनुभव यूरोप के फ्रांस और ब्रिटेन आदि राष्ट्रों को आज हो रहा है। अतः अपने देश की रक्षा के लिये सत्याग्रह जैसा कोई प्रत्यक्ष प्रतिकारात्मक शस्त्र खोजने की जरूरत यूरोप के विचारी तत्त्वज्ञ महसूस कर रहे हैं।

समाजवाद और अहिंसा

पूंजीवाद के उदय के बाद यूरोपीय लोकशाही ने पूंजीशाही का रूप लिया। इसलिए लोकशाही के तत्वों की रक्षा और विकास के उद्देश्य से समाजवादी तत्वज्ञान में लोकशाही का,

समता का, स्वतंत्रता का, और वन्धुता का तत्वज्ञान है। लेकिन इसके साथ-साथ हिंसा का भी अन्तर्भाव है। कम्यूनिज्म का अन्तिम ध्येय अहिंसात्मक ही है, लेकिन उस ध्येय तक पहुँचने के लिये हिंसा के रास्ते से जाना पड़ेगा ऐसा वे कहते हैं। कमसे कम रूस के क्रान्तिकारियों ने ही समाजवाद और हिंसात्मक क्रान्तिवाद का अभेद्य सम्बन्ध जोड़ने का यत्न किया है। परन्तु यह हिंसा का तत्त्व समता, स्वतंत्रता तथा वन्धुता के तत्त्वों से मेल नहीं खाता उसमें से लोकसत्ता तथा समाजसत्ता की प्राप्ति नहीं होती ऐसा माननेवाले कुछ समाजवादी तत्वज्ञ आज यूरोप में भी पैदा हो रहे हैं। इस सम्बन्ध की अधिक जानकारी वार्टडिलिक्ट नामक लेखक की "कान्क्वेस्ट ऑफ व्हायोलेन्स" (हिंसा पर विजय) नाम की पुस्तक में है। मॅडम होल्स्ट नामक एक कम्यूनिस्ट महिला शान्तिमय क्रान्ति के पक्ष में हो गई है। और अब यह प्रतिपादन करने लगी है कि समाजवाद के ध्येय हिंसा के मार्ग से प्राप्त हो ही नहीं सकते, ऐसा इस लेखक ने अपनी इस पुस्तक के १३०, १३१ पृष्ठों पर लिखा है।

लेखक का मतलब यह है कि समाजवाद का समता, स्वतंत्रता तथा वन्धुता के आदर्श में और हिंसा के मार्ग में परस्पर विरोध है। इन आदर्शों को कार्यान्वित करने के लिये हिंसक क्रान्ति करनेवाली साधारण जनता पूंजीशाही की हिंसा से लोहा लेकर जीत नहीं सकती। यदि बाज दफा जीत जाये तो भी आगे

चलकर इस हिंसा में से अनियंत्रित और अत्याचारी राज्यतंत्र उत्पन्न होता है। इसलिये समाजवादी क्रान्तिकारियों को गांधीजी की निःशस्त्र क्रान्ति का ही अनुकरण करना चाहिये। ऐसा यूरोप के अनेक लोग आज कहने लगे हैं।

'एल ऐन एस्हार्स', नामक अखबार के स्पेन की हाल की घटनाओं से क्या सीखें ! शीर्षक लेख में कहा गया है कि पाश्चात्य लोग गांधी जी की अहिंसा का कितना ही मजाक क्यों न करें, अन्त में क्रान्ति सफल करने की यही एक आशा है।

यूरोपीय जनता

यूरोपीय तत्त्वज्ञ लेखक और कुछ क्रान्तिकारी भी इस प्रकार अहिंसक क्रान्ति को ग्राह्य और आवश्यक मानने लगे हैं। लेकिन इससे यह अनुमान नहीं निकाला जा सकता कि यूरोपीय जनता इस मार्ग को एकदम अपना लेगी। आत्मबल में आज यूरोपीय जनता की श्रद्धा ही नहीं रही है। वह एक तो बुद्धि बल पर आश्रित प्रति निधिक संस्थाओं की चर्चात्मक राजनीति जानती है: या दूसरी शस्त्रबल पर अधिष्ठित राजनीति। आत्मबल पर स्थित सत्याग्रही राजनीति का अपनी बुद्धि से आकलन करने वाले कुछ तत्त्वज्ञों का आविर्भाव यूरोप में भले ही हुआ हो। लेकिन इतने ही से यूरोप में निःशस्त्र क्रान्ति सफल करने का संगठित आत्मबल एका एक पैदा हो जाये, तो वह एक अद्भुत घटना ही होगी। लेकिन इसका यह भी अर्थ नहीं कि यूरोप में हिंसक उपायों से समता, स्वतंत्रता और शान्तता का

साम्राज्य कायम होगा। इसका इतना ही मतलब है कि आज यूरोपीय जनता को आत्मोद्धार का वास्तविक मार्ग ही नहीं मिला है।

यूरोपीय इतिहास से सबक

प्रस्थापित राजसत्ता शस्त्रबल के प्रयोग से देश में एक प्रकार की शान्ति कायम कर सकती है और प्रचलित समाज रचना की सहायता कर उसे टिका सकती है। लेकिन यह शस्त्रबल इस समाज घटना को आमूलाग्र बदल कर सर्वांगीण क्रान्ति करने में उपयोगी नहीं होता और प्रस्थापित राजसत्ता को उलट कर जनता का अनियंत्रित सत्ता कायम करने में भी मददगार नहीं होता, यह यूरोप के इन बीस बर्षों के इतिहास से स्पष्ट है। शस्त्रक्रान्ति के सारे प्रयत्नों को कुचल कर आज यूरोप की धनिक शाही लोक शाही को हटा कर अनियंत्रित हो गई है। हम भी इससे अनुचित शिक्षा ले सकते हैं और सत्याग्रही तत्त्वज्ञान के आधार पर भारतीय समाजवादी क्रान्ति सफल कर सकते हैं। सत्याग्रही तत्त्वज्ञान आज राष्ट्रवादी प्रतीत होता हो तो भी वह समता, स्वतंत्रता और बन्धुता पर अधिष्ठित है और लोकशाही की प्रस्थापना उसका आज का अंगीकृत कार्य है। इसी कार्य में जनता का आत्मबल संगठित हो रहा है। जनता के इस आत्मबल से राष्ट्रीय लोकशाही की स्थापना होने पर उसका स्वरूप यूरोपीय राष्ट्रवाद तथा लोकशाही से भिन्न किस प्रकार हो सकता है यह बताया जा चुका है। पाश्चात् देशों में समाज

सत्ता का जो आदर्श निर्मित हुआ है वह भी अगर आत्मबल के साधन का उपयोग करे तो उसका काया पलट हो सकता है। सत्याग्रह में व्यक्तिवाद, राष्ट्रवाद और लोकसत्ता के पाश्चात्य आदर्श शामिल किये गये हैं और सत्याग्रह के तत्वज्ञान के सूत्र में ग्रथित होने के कारण उनका परस्पर विरोध नष्ट होकर वे परस्पर विघातक न होते हुये एक दूसरे की शोभा बढ़ा रहे हैं। उसी प्रकार समाज सत्ता के सिद्धान्त का भी सत्याग्रही तत्वज्ञान में समावेश करके यथार्थ लोकसत्ता और यथार्थ समाजसत्ता का आधार अहिंसा को ही बनाना आवश्यक है। यह बात संसार को माननी पड़ेगी।

आधुनिक भारत के तीन अलौकिक नेता

भारतीय संस्कृति अध्यात्म प्रवण संस्कृति है। गत पचास वर्षों में उसकी यह आध्यात्मिक प्रवृत्ति अनेक भारतीय नेताओं ने फिर से जाग्रत की है। लोकमान्य तिलक, योगी अरविन्द घोष और महात्मा गांधी—आधुनिक भारत के ये तीन अलौकिक नेता इसी अवधि में उत्पन्न हुए। उन्होंने भारतीय मन पर जो संस्कार किये और उन संस्कारों की बदौलत उसका जो प्राचीन आत्मबल जागृत हुआ उसी में से आधुनिक भारत का जन्म हुआ है। आधुनिक भारत की यह आध्यात्मिक शक्ति सत्याग्रह के रूप में आज सारे भारत खण्ड को व्याप्त कर रही है। और अब तो ब्रिटिश भारत की हद को पार कर वह रियासती हिन्दुस्तान में भी पदार्पण कर रही है। ब्रिटिश हिन्दुस्तान के

२६६

भिन्न भिन्न प्रान्तों में स्वराज्य निर्माण कर ब्रिटिश हिन्दुस्तान की राष्ट्रभावना खंडित करने की और इन नामधारी लोकशाही राज्ययंत्रों के सिर पर संघशासन का सामंतशाही राज्य तंत्र लादने की ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की चाल काटने के लिये कांग्रेस ने आज सात-आठ प्रान्तों के राज्य यंत्र अपने हाथ में लेकर उनके पीछे कांग्रेस पक्ष के रूप में ब्रिटिश हिन्दुस्तान की आम जनता का संगठित आत्मबल खड़ा कर दिया है। यह देख कर रियासती भारत की जनता भी सत्याग्रह के शस्त्र का प्रयोग करना चाहती है। जिस आत्मबल के प्रभाव से ब्रिटिश भारत की जनता ने अनियंत्रित साम्राज्यशाही को झुकाया उसी आत्मबल के प्रयोग से रियासती जनता अनियंत्रित सामंतशाही को झुका रही है।

रियासती भारत पर असर

जो सत्याग्रही साधन ब्रिटिश साम्राज्यशाही को झुका सका वही सत्याग्रही साधन आज रियासती सामंतशाही को झुकाने में उपयोगी साबित हो रहा है। जो लोग आज तक रियासती जनता के हितकर्ता होने का दावा करते थे और गांधी जी तथा कांग्रेस को उसके हित शत्रु कहना चाहते थे उनका प्रभाव अब कम हो रहा है और ब्रिटिश भारत की जनता के समान रियासती भारत की जनता भी सत्याग्रही बनकर गांधी जी की अनुयायी बन रही है। बीस साल पहिले जिस भारत में करीब करीब एक ही सत्याग्रही व्यक्ति था उसी भारत में आज सर्वत्र

सत्याग्रह की रणभेरियाँ सुनाई देती हैं और सत्याग्रही सामर्थ्य के द्वारा हम भारत में शीघ्र ही स्वतंत्र संयुक्त राज्य स्थापित कर सकेंगे, यह आत्मविश्वास फैल रहा है। इस सब का क्या अर्थ है। इस दृश्य के पीछे जो शक्ति है वह क्या केवल आभास मय है? क्या यह शक्ति संसार की प्रगतिगामी शक्तियों में से एक साबित हो सकती है? क्या संसार आधुनिक भारतवर्ष में दुनिया की एक अत्यन्त तेजस्वी अत्यन्त प्रभावी और अत्यन्त मंगलमय क्रान्ति शक्ति का आविर्भाव और उसके सामने साम्राज्यशाही तथा सामन्तशाही को झुकती हुई नहीं देख रहा है।

सत्याग्रह और पूँजीवाद

यह मंगलमय, पुरोगामी, प्रभावी, तेजस्वी, क्रान्ति कारक शक्ति हिन्दुस्तान की पूँजीशाही की सहायक होगी, ऐसी शंका जब कुछ लोग प्रकट करते हैं तो उनके अज्ञान पर दया आती है। जिस शक्ति ने जिस प्रकार सम्राज्यशाही की नाक में दम कर दिया और आज जिस तरह वह यहाँ की सामन्तशाही की नाक दम कर रही है उसी तरह वह भारत की पूँजीशाही के लिये भी अजेय साबित होगी इसमें सन्देह नहीं। सत्याग्रही तत्त्वज्ञान में अनियंत्रित पूंजीवाद को स्थान नहीं है, और पूंजीपति जनता की रोटी का सवाल हल नहीं कर सकते यह गांधी जी खूब जानते थे। इसलिये गांधी जी ने ग्रामोद्योग का संगठन शुरू किया है। भौतिक विद्या और यंत्रकला का विरोध करना लोगों का दारिद्र्य कायम रखना, और भारतीय संस्कृति

को मध्य युगीन अवस्था तक पीछे हटाना ग्रामोद्योग संगठन का उद्देश्य कदापि नहीं है। अगर किसी के दिमाग में अभी कोई बात हो तो भी तो भारत की जागृत, संगठित और आत्म ज्ञानी जनता वह सिद्ध नहीं होने देगी।

खादी और ग्रामोद्योग का अर्थ शास्त्र

खादी और ग्रामउद्योग के अर्थ शास्त्र का मुख्य तत्त्व यह है कि देश के हर एक वेकार को काम देने की और उसकी सांपत्तिक स्थिति में सुधार करने की जिम्मेदारी हिन्दी राष्ट्र ने स्वीकार करली है। भारत के नागरिकों के सामने केवल सस्ते से सस्ता माल अधिक से अधिक तादाद में रखने को ही समस्या नहीं है; वरन वह माल वरतने की हैसियत गरीव से गरीव व्यक्ति में भी किस तरह आवे यह बहुत विकट सवाल आज उसके सामने है। आज भारत की जनसंख्या लगभग ४० करोड़ हो रही है, और उसे खेती के अलावा दूसरा कोई भी रोजगार नहीं है। चालीस करोड़ की गुजर अकेली खेती पर नहीं हो सकता, यह प्रत्यक्ष प्रमाण से सावित हो गया है। खेती पर ही जिनका भरोसा है ऐसे लाखों, वल्कि करोड़ों लोगों को तुरन्त दूसरा कोई रोजगार न दिया गया तो उनका हाल वुरा होगा। जब हम खादी या ग्रामोद्योगी चीजें खरीदते हैं तो अपने इन करोड़ों देश भाइयों को रोजगार में लगाने की और उन रोजगारों की हिफाजत के लिए अपनी तरफ से भरसक कोशिश करने की और तकलीफ सहने की जिम्मेवारी लेते हैं। देश में तुरन्त

यांत्रिक कारखाने खड़े कर इन करोड़ों लोगों को काम देना कम से कम आज तो हमारे लिये असम्भव है। ऐसी दशा में इन करोड़ों देश-बन्धुओं के उद्योग धन्धे का सवाल थोड़ा बहुत तो हल हो और उनके लिये हम अत्यल्प ही क्यों न हो, त्याग करें, यह भावना इसकी तह में है। देश के करोड़ों लोगों को काम देने की जिम्मेवारी आज तक किसी ने महसूस ही नहीं की थी। जिन्हों ने इस देश में पूंजीवाद अर्थ शास्त्र की नींव डाली उन्होंने इस प्रश्न के महत्त्व को समझा ही नहीं। इसीलिये गत पचास-सौ वर्षों में यद्यपि पूंजीवाद ने काफी तरक्की की, तो भी देश में बेकार, अर्ध बेकार और दरिद्र लोगों की संख्या घटने के बदले बढ़ी है। जब से गांधी जी ने स्वदेशी आन्दोलन को खादी और ग्रामोद्योग का रूप दिया तभी से बेकारी के प्रश्न की ओर लोगों का विशेष ध्यान गया और अब यह बात करीब करीब सर्वमान्य हो गई है कि पूंजीवादी अर्थशास्त्र हमारी जनता की बेकारी का सवाल हल नहीं कर सकता हमारे आर्थिक विचारों में गांधी जी ने अगर कोई क्रान्ति की है तो वह यह है। उन्होंने भारत को यह बोध करा दिया है कि राष्ट्रीय अर्थ शास्त्र केवल राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाने का अर्थ-शास्त्र नहीं है प्रत्युत देश की बेकारी दूर करने का अर्थ-शास्त्र है। इसलिये अब यह कोई नहीं मानता कि पूंजीवाद की पद्धति से हिन्दी जनता का सवाल हल होगा। यह सब होते हुए ऐसा मानने के लिये क्या सबूत है कि कांग्रेस का स्वराज्य पूंजीवादी का राज्य होगा ?

निर्वाह वेतन

लेकिन गांधी जी केवल इतना ही कह कर नहीं रहते कि बेकारों को काम दो। अब उन्होंने ग्रामोद्योगों की अपनी योजना में दूसरा भी एक तत्व दाखिल किया है। वे कहते हैं कि हरएक श्रमजीवी को हररोज आठ घन्टे काम करने पर कम से कम आठ आने का निर्वाह वेतन मिलना चाहिये। मतलब यह कि राष्ट्रीय लोकशाही सरकार को हर एक व्यक्ति को काम देने की जिम्मेवारी लेनी चाहिये और देश का हरएक प्रौढ़ व्यक्ति स्वावलम्बी रहकर उद्योग द्वारा उदर निर्वाह कर सके ऐसा प्रबन्ध भी करना चाहिये इसके अतिरिक्त एक और अर्थ शास्त्रीय तत्व गांधी जी ने जनता के सामने पेश किया है। वे कहते हैं कि देश के कारखानेदार और जमींदार कारखानों के या जमीन के मालिक नहीं; बल्कि संरक्षक (ट्रस्टी) हैं। उन्हें देश की सम्पत्ति बढ़ाने के लिये हमेशा यत्नशील रहना चाहिये और अपनी मिहनत के लिये उचित कमीशन लेकर सन्तोष मानना चाहिये। इसका यह साफ मतलब है कि आइन्दा भारतवर्ष में कोई भी अपनी मिलकियत के द्वारा किसान और मजदूर वर्ग को चूसने के अमर्यादित अधिकार का उपयोग नहीं कर सकेगा। इस तरह अनेक दृष्टियों से विचार करने पर भी गांधी जी का अर्थ कारण पूंजीवादी अर्थकारण नहीं कहा जा सकता; बल्कि यह मानना होगा कि उसमें से भारतीय समाजवादका ही उदय होगा।

प्राचीन भारत की आध्यात्मिक शक्ति की मूर्ति

लेकिन यदि यह भविष्य चर्चा छोड़ दें और गांधी जी के तत्वज्ञान से आगे क्या-क्या परिणाम होंगे इसका विचार भी थोड़ी देर के लिये छोड़ दें तो भी यह तो मानना ही होगा कि गांधी जी का गये बीस वर्षों का कार्य ऐसा है कि जिस पर किसी भी राष्ट्र निर्मात्री विभूति को अभिमान हो। भारतीय जनता ने गये बीस साल में आशातीत प्रगति की है। विशाल परिमाण में उसका संगठन हुआ है और राष्ट्रीय लोकशाही के निर्माण की उसकी सामर्थ्य कल्पनातीत बढ़ गई है। भारत में आज एक अपूर्व आशावाद उत्पन्न हो गया है और हम किसी भी शक्तिसे हारेंगे नहीं, बल्कि हरएक जनता विरोधी शक्ति को अपने सामने झुकने के लिये बाध्य कर सकते हैं ऐसा आत्म विश्वास सर्वत्र दिखाई देता है। गांधी जी ने इस महाद्वीप प्राय राष्ट्र में यह जो नव चैतन्य पैदा किया है वह साधारण नहीं है। और इतना प्रचंड कार्य, इतना प्रभावशाली संगठन, इतनी दुर्धर्ष शक्ति किन साधनों से निर्माण की! गांधी जी दक्षिण अफ्रिका से जब लौटे तो अपने साथ कौन से शस्त्रास्त्र लेकर आये थे? एक निष्ठ और अहिंसा वृत्ति के सिवा उनके पास न तो दूसरा कोई साधन था न दूसरी कोई सम्पत्ति तपोबल ही उनका बल था और तपोधन ही उनका धन। उन्होंने अपने इस बल और धन का प्रचार तथा प्रसार अखिल भारत की जनता में किया। एक पिछड़े हुये राष्ट्र में अज्ञानी

राष्ट्रों का गुरुत्व कर सकने का आत्म विश्वास उत्पन्न किया। प्राचीन भारतीयों की आध्यात्मिक शक्ति मूर्तिमती होकर आज भारत खण्ड का नेतृत्व कर रही है।

श्री कृष्ण और बुद्ध का समन्वय

गांधी जी के सत्याग्रही तत्वज्ञानमें श्री कृष्ण के कर्मयोग तथा गौतम बुद्ध की अहिंसा का समन्वय है। भगवद्गीता के रूप में श्री कृष्ण ने राजधर्म की अहिंसा का उपदेश दिया। परन्तु राजधर्म की अहिंसा हमेशा मर्यादित ही रहेगी। क्योंकि राजधर्म जब पूर्ण रूप से अहिंसात्मक हो जाता है तो उसका राजधर्मत्व ही नहीं रहता। जब तक राजा और राज्य है तब तक संसार में पूर्ण अहिंसा की सत्ता स्थापित नहीं हो सकती। परन्तु प्रजाधर्म की अहिंसा के लिये ऐसी कोई मर्यादा नियत करने की जरुरत नहीं है। जब प्रजा की अहिंसा का विकास होता है और अहिंसा से हिंसा का प्रतिकार करने की शक्ति उसमें आ जाती है, तो राज धर्म की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिये अहिंसा की प्रस्थापना का प्रारम्भ प्रजाधर्म से करना पड़ता है।

गांधी जी की भारत को देन

गांधी जी ने सत्याग्रह का प्रजाधर्म भारतीयों को सिखा कर उन्हें आत्मोद्धार का वास्तविक मार्ग दिखा दिया है। मार्ग पर चलने से उन्हें यह विश्वास होने लगा है कि वास्तविक व्यक्ति स्वातंत्र वास्तविक राष्ट्रीय स्वातंत्र, वास्तविक लोक-

सत्ता और वास्तविक समाजसत्ता की प्राप्ति अहिंसा से ही हो सकती है। आधुनिक भारत को यह जो दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई है—जिसकी बदौलत उसमें यह आत्म विश्वास पैदा हो गया है कि वह संसार का नेतृत्व करने का अधिकारी है—वही गांधी जी की भारत को अनमोल देन है; और इसीलिये कृतज्ञ होकर वह आज गांधी जी को दीर्घ आयुरारोग्य देने की प्रार्थना कर रहा है।

आचार्य शंकर दात्तात्रेय कालेलकर

2 16